विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

मूल्य : डेढ़ रुपया

× × ×

प्रथम संस्करण : १९४५

द्वितीय संस्करण : १९४९

मुद्रक

विद्यामंदिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ

निवेदन

(प्रथम संस्करण से)

रहस्यवाद-छायावाद अथवा अन्य वादों की एक लेखक द्वारा विवेचना से यह कहीं उपयोगी है कि अनेक विद्वानों के विचार संकलित करके छात्रों और काव्य-प्रेमियों के सामने रखे जायँ। प्रस्तुत संग्रह का यही मुख्य उद्देश्य है।

जिन विद्वानों के विचार यहाँ संकलित हैं, उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

(द्वितीय संस्करण के संबंध में)

चार वर्ष बाद इस पुस्तक का नया संस्करण निकल रहा है। इस बार इसमें 'प्रसाद' जी के विचार भी सम्मिलित कर लिए गए हैं और पिछले निबंधों को संचित करके विशेष संगठित कर दिया गया है। अपने इस नए रूप में मुझे विश्वास है कि रहस्यवाद-छायावाद का शुद्ध रूप और आज की कविता की तत्संबंधी विशेषताएँ समझने में इस पुस्तक से पर्याप्त सहायता मिलेगी।

रानीकटरा, लखनऊ]

प्रे० ना० टंडन

सूची

रहस्यवाद और छायावाद

'छायावाद' शब्द किसी लंबे इतिहास से दबा नहीं है। भारतीय साहित्य शास्त्र के लिए तो एक नितान्त अर्वाचीन शब्द है। अँग्रेजी साहित्य में भी इसका तादृश्य भाववाची शब्द कठिनता से मिलेगा, वैसे पुरातनवादी इसे वेदों में ही क्यों न ढूँढ निकालें।

वस्तु रूप में छाया की भाँति अग्राह्य, अरूप, तथा आभा मात्र को पकड़ कर सरूप करने · यत्न को 'छायावाद' कहना चाहिए। फिसल-फिसल जानेवाली परिस्थितियाँ जब अधिकारी के अनुभव के दर्पण में काँपती रहती हैं और व्याकुल होकर उन्हें यावत् किंचित किसी न किसी ढंग से, किसी न किसी प्रकार को कथन की ... में समेटता है तो उसके इस कलम से उतारने की करामात को '...' कहेंगे और 'छाया' को ही बुला-बुला के उतारने के अ... ... 'छायावादी'।

अँग्रेजी साहित्य में, और यहाँ भी, पहुँचे हुए सतों के अ... ऐसे ही टेढ़े-मेढ़े अधूरे, पर उनके लिए पूरे, जब लेखनी क ... ते हैं ता उनमें 'छाया' का वह व्यक्त करने का प्रयास ... अँग्रेजी साहित्य में एक शब्द मिस्टीसिज्म मिलता है। असाधारण अनुभूतियाँ साहित्य के इस वर्ग में मिलती हैं। कवियों के गद्य और पद्य दोनों में एक विशेष प्रकार की शैल... हुई है। अपनी केवलता ही के कारण उस शैली की थोड़े... बड़ी धूम रही। इसकी सबसे बड़ी विशेषता प्रतीक प्रयोग अ... रमकता थी। वस्तु से अलग केवल इस अभिव्यंजन-चातुर्य

में सिंबलिज्म' नाम दिया गया। सिंबलिज्म छायावाद की भाँति व्यापक नहीं है।

भारतीय साहित्य में कबीर तो पहिले ही से चले आ रहे थे, पर रवि बाबू के संपर्क से इस शैली को विशेष प्रकार से अपनाया गया। इस शैली में अपना निजी आकर्षण था। 'छाया' को भी न देखने वाले केवल इस शैली के ढंग से 'छाया' दिखाने का स्वाँग भरने लगे। इसी प्रकार के लिखने के अनेक ढंग चल निकले; वस्तु बिलकुल गौण हो गई। अभिव्यंजना ही सब कुछ समझी जाने लगी और उसी को प्रधान रूप मिला। आज दिन 'छायावाद' के नाम से जो कुछ हिंदी में प्रसिद्ध है उसे केवल अभिव्यंजन चमत्कार ही समझना चाहिए। भारतीय लक्षण-ग्रंथों में अभिव्यंजन विधान का इतना ऊहापोह किया गया है कि आज के छायावाद का यदि विश्लेषण किया जाय तो उसके समस्त रूप कहीं न-कहीं बिखरे हुए पर सँजोए, मिल जायँगे। फिर भी छायावाद का आज एक पृथक् रूप बन गया है। वस्तु से उसका कम लगाव रह गया है। इसी लिए छायावाद को केवल अभिव्यंजन-विधान समझना चाहिए, वस्तु की चीज नहीं।

आज तो रहस्यवाद और छायावाद काव्य के पृथक् पृथक् रूप हैं। जहाँ ये दोनों मिल जाते हैं, वहाँ एक नया वर्ग प्रस्तुत हो जाता है। रहस्यवाद का संबंध सीधे वस्तुविधान से रहता है, अभिव्यंजन-विधान से नहीं। परंतु छायावाद का संबंध केवल अभिव्यंजना की विचित्रता और दुरूह भावगम्यता से रहता है; वस्तु का लगाव उसका गौण रहता है। इसीलिए आध्यात्मिक रहस्यवाद का, जो बहुधा अच्छी छायावादी कविताओं में वस्तु-रूप से स्वीकृत देखा जाता है प्रत्येक छायावादी कविता में होना आवश्यक नहीं। आज की छायावादी कविता अभिव्यंजन की अनेकरूपता को ही सबसे बड़ी विशेषता रखती है। वह केवल उक्ति-वैचित्र्य पर टिकी है। अतएव उसका छायावादी अभिधान सार्थक है। प्रतीकवाद, अन्योक्तिवाद, लक्षणावाद, संकेतवाद,

अरूपवाद, नीहारवाद और न जाने कितने ऐसे ही वाद छायावाद में ढूँढ़े जा सकते हैं। पुराने युग में वक्रोक्तिवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद और कुछ अंशों में ध्वनिवाद भी अभिव्यंजना के ही रूप समझे जाते थे। कुछ तो आज की छायावादी कविता में भी परिलक्षित रूप में मिलेंगे।

आज की छायावादी कविता अभिव्यंजना के समस्त पेचीदे 'वादों' के सहारे आगे बढ़ता है, और साथ-ही-साथ पुराने रूढ़िवाद अभिव्यंजना के स्वरूपों को पीछे छोड़ती चली जाती है। रहस्यवाद की उत्तम अभिव्यंजना के लिए प्रतीकवाद, मानवीकरणवाद, अन्यवाद, प्रतीति अथवा समासोक्तिवाद अत्यन्त आवश्यक होते हैं। अतएव यह प्रश्न उठता है कि क्या छायावाद का प्रयोग रहस्यवाद कविता के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है? इसके उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि वस्तु कविता की प्राण है। प्राणी कोई भी भाषा पहनकर प्रकाश में निकल सकता है। अतएव यह मानते हुए कि छायावाद के जामे में रहस्यवाद खिल उठता है, यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि रहस्यवादी कविता को छायावादी होना अनिवार्य है। नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं, जिनके अभिव्यंजन में यह पेचीदापन नहीं है कि उन्हें हम छायावादी उक्तियाँ कह सकें, यद्यपि वस्तु के अनुसार उनमें रहस्यवाद का पूर्ण प्रवेश हुआ है। ऐसी पंक्तियाँ ठेठ रहस्यवादी कहलायँगी। पुराने कवियों में इसके उदाहरण बहुत मिलेंगे जैसे --

पानी ही तें हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥ कबीर॥

इस उक्ति में 'अहम्' और 'परम्' की अद्वैतता की प्रतिष्ठा दृढ़ता और पूर्ण विश्वास के साथ की गई है। 'हिम' और 'पानी' की तात्विक एकरूपता को केवल उदाहरण रूप में आरोपित करके आत्मानन्द के भीतर अद्वैत का आभास दिया गया है। इसी प्रकार अन्त के पद में 'अब कछु कहा न जाय' लिखकर साक्षात्कार किए हुए रहस्यवादी

की यथेष्ट अभिव्यंजन-कठिनता की ओर भी संकेत कर दिया है। इस उक्ति में छायावाद की कोई छाया नहीं है, फिर भी रहस्यवाद उपस्थित है।

पुराने कवि का एक दूसरा उदाहरण देखिए—

बिगसा कुमुद देखि ससिरेखा;
भय तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।
पावा रूप रूप जस चाहा;
ससिमुख जनु दरपन होइ राहा।
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर;
हँसत जो देखा हंस भा, दसन ज्योति नग हीर। (जायसी)

इस उक्ति में 'कुमुद', ससि', 'कँवल', 'हंस', 'नग', 'हीर' ऐसे जितने शब्द आए हैं, वे सदर्भ की प्रतिष्ठा के लिए हैं। पद्मावती जलाशय में स्नान कर रही है। कवि पद्मावती को परमरूप का प्रतिरूप समझता ही है, अतएव समय-समय पर और स्थान-स्थान पर वह प्रत्यक्ष के सहारे परोक्ष की ओर संकेत कर दिया करता है। यहाँ भी जलाशय को अखिल विश्व का प्रतिनिधित्व देकर पद्मावती के विराट् रूप में उसे विलास करते हुए दिखाया है। 'ससिमुख' अर्थात् पद्मावती मानो दर्पण है, जिसमें समस्त (विश्व) जलाशय उपस्थित है। 'कँवल' ने, 'नीर' ने, 'हंस' ने 'नग' ने और 'हीर' ने (यह सब विश्व की अनेकरूपता है) अपना असली रूप पद्मावती के विराट रूप में पाया। 'अहम्' ब्रह्म में लय पाकर उसी में विलास करने लगा। 'अहं' की माया टूट गई। मायाजन्य भाव यह है कि ऊपर की पंक्तियों में, वस्तु-रूप में रहस्यवाद के जिस रूप को पकड़ा गया है, उसमें छायावाद का छल नहीं है। प्रतिवस्तूपमा प्रसंग की आवश्यक और व्यक्त रूढ़ि है। उसमें लाक्षणिकता बहुत कम है। वस्तुओं का परिगणन रूपक-परंपरा के भीतर है।

पुराने कवियों में ही नहीं, नए कवियों में भी छायावाद से बचा हुआ, कोरा रहस्यवाद प्रचुर मात्रा में मिलता है—

भरा नयनों में मन में रूप,
किसी छलिया का अमल अनूप।
जल, थल, मारुत, व्योम में जो छाया है सब ओर,
खोज-खोजकर खो गई मैं, पागल प्रेम विभोर।
भाँग से भरा हुआ वह कूप,
भरा नयनों में मन में रूप।
धमनी की तंत्री बजी, तू रहा लगाये कान,
बलिहारी मैं, कौन तू है मेरा जीवन-प्रान।
खेलता जैसे छाया-धूप,
भरा नयनों में मन में रूप।—'प्रसाद'

ऊपर का उदाहरण नितांत स्पष्ट है। उसमें कहीं भी छायावाद की दुरूहता नहीं है। अहम् 'ब्रह्म' की जुस्तजू में परेशान है और वह इसके साथ लुका-छिपी खेलता है। कहीं अपनी छवि की झाँकी दिखाकर भक्त को उद्विग्न कर देता और वह उसी ओर दौड़ता है। झिलमिल प्रकाश वहाँ से छिप जाता है। खोजता खोजता 'अहम्' स्वयं 'अहं' नहीं रह जाता—

'खोज खोजकर खो गई मैं'

और कबीर की यह रहस्यमय उक्ति—

'तू तू करता तू भया मुझमें रही न हूँ'

—चरितार्थ हो जाती है। आगे चलकर पूर्ण तादात्म्य की परिस्थिति में 'अहम्' में ही 'ब्रह्म' समा जाता है। बूँद में समुद्र प्रवेश कर जाता है—

बूँद समुद्र समान यह अचरज कासों कहौं।
हेरनहार हिरान, रहिमन आपुहि आपु में। (रहीम)

कहने का अभिप्राय यह कि रहस्यवादी कविता में साधना और

साध्य का रहस्यमय एकीकरण का रूप देकर भी प्रसाद ने उसमें छायावाद का प्रश्रय नहीं लिया; वह कोरे रहस्यवाद का ही अच्छा उदाहरण है। ठीक इसी प्रकार का एक दूसरे कवि का उदाहरण नीचे दिया जाता है--

हाँ सखि! आओ बाँह खोल हम,
लगकर गले जुड़ा लें प्राण;
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में,
हो जावें द्रुत अंतर्धान। (पंत)

ऊपर की पंक्तियों में रहस्यवाद बहुत स्पष्ट तो नहीं है, क्योंकि प्रसंग में कल्पना के सहारे जिस रूप से कवि चल रहा था उससे रहस्यवाद के लिए विशेष अवकाश ही न था, किंतु "प्रियतम में हो जावें द्रुत अंतर्धान"—इस व्यंजना में रहस्यमय झुकाव स्पष्ट है। इस रहस्यवाद की उक्ति में भी छायावाद का पूर्ण अभाव है।

एक दूसरा कवि अपनी कविता इस प्रकार आरंभ करता है—

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे? ('नवीन')

यहाँ स्पष्ट ही अव्यक्त के लिए तीव्र पुकार है।

ध्याता ध्येय के लिए तीव्र वितृष्णा के साथ अग्रसर है। वह संसार के श्रद्धेयों के अध्रुव चरण से परेशान है। उक्ति, चिंतना की विशेषता के कारण अध्यात्मवादी न होकर रहस्यवादी हो गई है। परंतु अभिव्यंजन के उलझाव से दूर होकर छायावादी होने से भी बचा है। कवि अन्यत्र कहलाता है--

जोह रहा हूँ बाट चाव से नए जनम के होने की।
देखूँ यह माटी की प्रतिमा कब करते हो सोने की;
रोने की घड़ियों का अंतिम क्षण कब आयेगा देखूँ?
कब यह मनुआँ ढीठ पुण्य-पथ पर बढ़ पायेगा देखूँ?
भवँरों में मैं फँसा हुआ हूँ।
ममताभाव से कसा हुआ हूँ।

नदियाँ उमड़ रहीं बलखाती ।
कल-लहरों में बसा हुआ हूँ।
अरे ! किनारा बहुत दूर है प्रिय मेरे भुजदंड थके ;
भर भर प्याले यौवन-मदिरा के देना अब बंद करो । ('नवीन')

इस उक्ति में पहली चारों पंक्तियों में तो भक्त का 'स्पष्ट अध्यात्मवाद है । दूसरी चारों पंक्तियों में भी अन्योक्ति के रूप में प्रतीक प्रयोग के सहारे वही अध्यात्मवाद का भक्ति-मय रूप और आगे बढ़ाया गया है । परंतु नवीं पंक्ति में 'अरे ! किनारा बहुत दूर है" में रहस्यवाद झलकने लगता है । इस उक्ति में भी अभिव्यंजना कहीं भी छायावाद तक नहीं पहुँचती ।

नीचे एक और गीत दिया जाता है —

फिर विकल हैं प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी
देख लूँ उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग
कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बनकर
आज मेरे श्वास घेरे ?
(महादेवी)

यह व्यक्ति की औत्सुक्यपूर्ण तड़पन है । विश्व के रहस्य को विदीर्ण करने के लिए आत्मा का प्रयास है । जीवन को ही घेरा समझनेवाला प्राणी पहेली को सुलझाने के लिए श्वासों को भी पीछे छोड़ देने में हिचक नहीं सकता । वह देखता है कि जब तक वह सश्वास है, तब तक रहस्य विदीर्ण नहीं हो सकता । ऊपर की कविता की अंतिम दो पंक्तियों का भाव कबीर ने भी अपनी मस्तीवाली धुन में दूसरे प्रकार से कहा है—

नहीं फिर भी ना आती लाज ..

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?

हुआ था जब संध्या-आलोक
हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर,
विहग-रव बनकर मैं चितचोर
गा रहा था गुण किंतु कठोर !
रहे तुम नहीं वहाँ भी, शोक !

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?

याद है क्या न प्रात की बात ?
खिले थे जब तुम बनकर फूल,
भ्रमर बन प्राण ! लगाने धूल
पास आया मैं चुनके शूल

झुलाये तुमने मेरे गान…… …
निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान !
कहाँ थे जब तुम अनुराग
बना था मैं भी मूक-कराल
रात-दिन दृष्टि-द्वार उन्मील
बुलाया तुम्हें, (यही क्या शील !)
न आए पास, कृशा तन गात…… ..
निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?
अभी मैं बना रहा हूँ गीत
अश्रु में एक-एक निज प्रात,
किया करते हो जो दिन-रात।
झुलाते हो प्रदीप बन वात
प्राणप्रिय ! होकर तुम विपरीत…
निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ? (पंत)

ऊपर की कविता में आत्मा परमात्मा की निष्ठुरता की फरियाद करती है। सगुण असीम का आलोक-मात्र देखता है, पर उसमें समाधि नहीं करने पाता। यह आलोक विपरीत होकर छिप-छिप जाता है। आधार की धारा में आलिंगन पीन नहीं पाता। अतः उस गगन का विरह से संकलन करता है, जहाँ वह वेदना ही उसे दिखाई देता है। विरह में तीव्रता प्रदान करने के लिए ये सारे प्रसंग दिये गए हैं, परंतु फिर भी अभिव्यंजना में कोई वैचोदान अथवा लाक्षणिकता की दुरूहता द्वारा चमत्कार उत्पन्न नहीं किया गया। अतएव यहाँ भी छायावाद नहीं है। यह रहस्यवाद का अवश्य अच्छा उदाहरण है।

यह भी देखा गया है कि केवल अभिव्यंजना की दुरूह संकेतात्मकता के कारण ही कभी-कभी आलोचक किसी कविता को रहस्यवाद ही कहने लगते हैं, यह शुद्ध भ्रम है। ऐसी कविताएँ छायावादी ही

सकती हैं, परंतु रहस्यवाद से उनका कोई संबंध नहीं। नीचे इस प्रकार की कविताओं के उदाहरण दिए जाते हैं—

मादकता-सी तरल हँसी के प्याले में उठती लहरी
मेरे निश्वासों से उठकर अधर चूमने को ठहरी
मैं व्याकुल परिरंभ-मुकुल में बंदी अलि-सा काँप रहा
छलक उठा प्याला लहरी में मेरे सुख का माप रहा।
सजग सुप्त सौंदर्य हुआ, हो चपल चली भौंहें मिलने
लीन हो गई लहर, लगे मेरे ही नख छाती छिलने
श्यामा का नखदान मनोहर मुक्ताओं से ग्रथित रहा।
जीवन के उस पार उड़ाता हँसी खड़ा मैं चकित रहा।
तुम अपनी निष्ठुर क्रीड़ा के विभ्रम से, बहकाने से
सुखी हुए फिर लगे देखने मुझे पथिक पहचाने से
उस सुख का आलिंगन करने कभी भूलकर आ जाना
मिलन-क्षितिज-तट मधु जलनिधि में मृदु हिलकोर उठा जाना

('प्रसाद')

यह देखा गया है कि नवीन युग के हिंदी-कवियों का रुझान छायावाद की ओर अधिक है, कभी-कभी तो उनमें वस्तु निरूपण का पूरा-पूरा अभाव रहता है, केवल छायावाद के उखड़े हुए चित्र सामने रक्खे जाते हैं। परंतु ऊपर की कविता में चित्रों के रंगीन होने में कोई कसर नहीं है।

वास्तव में परिस्थितियों की समस्त मूर्तिमत्ता छायावाद पर आश्रित है। कहीं-कहीं तो मूर्ति की नग्नता, अभद्र हो जाती यदि छायावाद का सहारा न लिया जाता। समझने की बात यह है कि इस कविता में वस्तु-रूप में रहस्यवाद ग्रहण नहीं किया गया। अतएव यह रहस्यवादी कविता नहीं है। यह कोरा छायावाद है।

वायु के एक ओर से झेले जाने पर जल दूसरी ओर उठेगा ही। इस साधारण-सी बात को सांग-रूपक के घेरे में डालकर जहाँ एक ओर

उक्ति का उत्कृष्ट चमत्कार सामने आता है, वहाँ दूसरी ओर कल्पना के अधीन नाना छोटी-छोटी उद्भावनाओं की जगमगाहट हृदय को चमकाती भी है। 'प्याले में बुदबुद उठने' से यह अर्थ लेना कि मुस्कराहट समाप्त हो गई, "मधुर शून्य सौंदर्य हुआ" से शैथिल्य उत्पन्न हो गया यह भाव निकालना, 'लीन हो गई लहर' से यह समझना कि मुस्कराहट समाप्त हो गई, ये नितांत नए संकेत हैं जिन तक पहुँचना असम्भव हो जाता यदि 'दो प्याले चलीं भौंहें मिलने'— से स्पष्ट होते के सांकेतिक भावों का रूप सामने न खड़ा हो जाता। बहुत सी कोठरियों में बंद की हुई लाक्षणिकता अथवा ध्वनि, काव्य के काम की तभी हो सकती है जब उसको प्रकाश में लानेवाला झटका, चाहे वह कितने सूक्ष्म कौशल तक का क्यों न हो, बाहर अनुभव होता रहे। इसी लिए रूढ़िगत प्रतीक रहस्यवाद को सुबोध बनाने के लिए अधिक उपयोगी हैं। पाठकों के सामने ये स्वयंसिद्ध रूप में उपस्थित होते हैं।

ऊपर का "प्याले चलीं भौंहें मिलने" को हम रूढ़ि का ही नवीन प्रयोग मानते हैं। आगे चलकर "श्यामा का नखदान मनोहर मुक्ताओं से ग्रथित रहा" वाली उक्ति में चंद्रकला को रजनी (श्यामा) रमणी का प्राप्त नखदान के रूप में देखना और नक्षत्रमाला को उसके उर का मौक्तिक माल समझना जहाँ एक ओर शृंगारसाधना का विराट रूप उपस्थित करता है वहाँ "मनोहर मुक्ताओं से ग्रथित रहा" वाली पंक्ति से प्रेमी के रोकर अपने दानों और आँसू की माला बनानेवाले की मूर्ति भी सामने आती है, जिसकी सार्थकता "लीन हो गई लहर" के बाद ठीक बैठ जाती है।

छायावाद के दुरूह उक्तियों में इस प्रकार का अर्थ-भेद हो जाना स्वाभाविक है।

एक दूसरी उक्ति देखिये—

अब न कपोलों पर छाया-सी पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुजमूलों में शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अब माप

कंकण क्वणित रणित नूपुर थे हिलते थे छाती पर हार
मुखरित था कलरव गीतों में स्वर लय का होता अभिसार

(प्रसाद)

कपोलों पर सुरभित माप का आकार बनाना जहाँ एक ओर चुंबन की क्रिया की ओर संकेत करता है, वहाँ कपोलों की उज्ज्वलता और निर्मलता की ओर भी ध्यान ले जाता है; छायावाद में जब इस प्रकार की अनेकार्थतावाली ध्वनियाँ बिना कष्टप्रयास के उपलब्ध हो जाती हैं तो अभिव्यंजना को सफलीभूत समझना चाहिए।

दूसरी पंक्ति से प्रगाढ़ और व्यस्त आलिंगन का संकेत तो मिल जाता है परंतु 'वसन' के आ जाने से भाव-आघात कुछ शिथिल-सा हो जाता है, यद्यपि 'शिथिल' को 'वसन' का विशेषण बनाकर उसका परिहार किया गया है। ऊपर की पंक्तियाँ छायावाद की हैं, रहस्यवाद से उनका कोई सरोकार नहीं।

ऊपर-जैसा अभिव्यंजना-सौंदर्य नीचे की पंक्तियों में भी मिलेगा—

पाकर विशाल कच-भार एड़ियाँ धँसतीं;
तब नख-ज्योति-मिस, मृदुल अँगुलियाँ हँसतीं।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहास-सा झड़ता।

(मैथिलीशरण)

मुस्कराने में या तो दंतपंक्तियों की धवलता कौंध जाती है या होठों की लाली चमक उठती है; दोनों रूपों को एक-एक करके सामने रखकर चमत्कार उत्पन्न किया है। 'नख-ज्योति' धवल होगी और अरुण एड़ियों का सुहास्य लाल होगा। सहज में हम जान लेते हैं कि सीता जी के बाल लंबे और घने हैं। चाल में गजगामिनी की ठसक है। उँगलियाँ कोमल हैं, नख चमक रहे हैं और एड़ियाँ अरुण हैं। इस उक्ति में भी रहस्यवाद ढूँढ़ना भ्रम है।

एक और कविता देखिए—

आज सुनहली बेला
आज क्षितिज पर कौन रहा है
सुनो कौन चितेरा!
मोती का जल सोने की रज
क्या फिर सुख में
मानस गगन में
फैला मिटा देगा इसको
रजनी का श्याम अकेला!
लघु छंदों के स्पन्दन से
ध्वनिमय अनंत अंबर है!
पल्लव बुद्बुद और गाते
सोने का जग सागर है
सागर जब भर
रहा सुरभि-उर;
क्या सुना तम भर न सकेगा
यह रागों का मेला!
विद्रुम पंखी मेघ कहीं हैं
क्या सोना क्षण-भर ही!
गोधूली दिन का परिणय भी
तम की एक लहर ही!
इसी पथ में मिल,
युग - युग प्रतिपल,
सुख ने दुख दुख ने सुख के—
वर अभिशापों को झेला!
कितने भावों ने रँग डाली
सूनी इच्छाएँ मेरी,

स्मित में नव - प्रभात
चितवन में संध्या देती फेरी
उर जल - कणमय,
सुधि रंगोंमय
देखूँ तो तम बन आता है
किस क्षण वह अलबेला !
(महादेवी)

इस कविता में विषादवाद, औत्सुक्यवाद नश्वरवाद, परास्तवाद अथवा इसी प्रकार का कोई वाद हो सकता है, जिसे छायावाद ने अपने क्रोड़ में सजाकर सामने रक्खा है। परंतु वह रहस्यवाद नहीं है। यह कविता भी दार्शनिक छायावाद का अच्छा उदाहरण है। और देखिए—

पछतावे की परछाईं-सी
तुम भू पर छाई हो कौन ?
दुर्बलता - सी, अँगड़ाई - सी
अपराधी-सी भय से मौन, (पंत)

इस उक्ति में छायावाद कल्पना के नाना रूपों के चित्रित करने में व्यय किया गया है। यहाँ भी वह कोरा छायावाद ही है; रहस्यवाद से उसमें कोई सरोकार नहीं।

आगे जो पद उद्धृत किया जाता है, उसका विषय दार्शनिक रहस्य है; परन्तु काव्य-वस्तु रहस्यवाद नहीं। चिंतनावाद और दर्शनवाद रहस्यवाद नहीं होते।

पल में उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा
फु । इतना शून्य में मेरा हृदय उच्छ्वास मेरा
ढूँढ़ने जाऊँ कहाँ मैं आँगन में आलोक फीका
दे लरजाने लगे हैं जो हुआ है भार जी का
उस जग के क्रोध-पूरित व्यंग को दिल खोल सहना

और जग के राग में इन आँसुओं को घोल कहता
पागलों के स्वप्न ने उड़ चंद्र-मंडल आज घेरा।
पंख खोले उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा॥
(उदयशंकर भट्ट)

चिंतना को विश्व की बहुत-सी समस्याएँ उकसा सकती हैं। नाना प्रकार के वाद उसे सजग कर सकते हैं, परंतु परोक्ष की रसभरी झाँकी उपस्थित करना, निस्सीम को ससीम बनाना, यह कोई दार्शनिक प्रत्यय नहीं है। यह तो अरूप को निरूपित करने का सरूप का प्रयास है, जिसकी प्रेरणा में समूचे हृदय की छलकती हुई वासना रहती है। केवल यह साधना जब कविता-वस्तु-रूप में प्रकट होती है, तब रहस्यवाद की अवतारणा होती है। ऊपर दी हुई 'भट्टजी' की सुंदर दार्शनिक छायावाद की कविता इस युग की चिंतना-संबंधी अच्छी कृति है, परंतु वह रहस्यवादी कविता नहीं है।

कोरे 'छायावाद' के चित्र उपस्थित करनेवालों में भी वर्तमान कवियों में जयशंकर 'प्रसाद' अच्छे सफल हुए हैं। अन्यत्र इसके उदाहरण दिए जा चुके हैं। एक और उदाहरण देकर इनके प्रसंग की व्याख्या की जायगी—

अगरु-धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हों इन अलकों से
मादकता लाली के डोरे इधर फँसे हों पलकों से
व्याकुल बिजली-सी तुम मचलो आर्द्र-हृदय घनमाला से
आँसू बरुनी से उलझे हों, अधर प्रेम के प्याला से
इस उदास मन की अभिलाषा अँटकी रहे प्रलोभन से
व्याकुलता सौ-सौ बल खाकर उलझ रही हो जीवन से
छवि-प्रकाश-किरणें उलझी हों जीवन के भविष्य तम से
ये लायेंगी रंग सुलालित होने दो कंपन सम से
इस आकुल जीवन की घड़ियाँ इन निष्ठुर आघातों से
बजा करें अगणित यंत्रों से सुख-दुख के अनुपातों से

उखड़ी साँसें उलझ रही हों धड़कन से कुछ परिमित हो
अनुनय उलझ रहा हो तीखे तिरस्कार से लांछित हो
यह दुर्बल दीनता रहे उलझी फिर चाहे ठुकराओ
निर्दयता के इन चरणों से, जिसमें तुम भी सुख पाओ
(प्रसाद)

केशों के लिए 'अगरु' से सुगंध, 'श्यामा' से कालापन और 'लहरियों' से घुँघरालापन बड़ी सुंदरता से व्यक्त किए गए हैं। 'अधर प्रेम के प्याला से' का यह भाव निकालना कि अधर अधर से संलग्न है, दूसरी लक्षणा का निष्कर्ष है। वास्तव में ऊपर की पंक्तियों में प्रेमी की याचना प्रेम के समस्त स्वरूपों में रमण करती है, जिसमें अनुनय भी हो, विनय भी हो, संयोग का सुख भी हो, वियोग की आहें भी, झिड़कियाँ भी हों, मनाना भी हो। 'प्रसाद' जी के अतिरिक्त यदि और कोई कलाकार होता और इसी आशय को व्यक्त करने का साहस करता, तो कदाचित् ही अश्लीलता को बचा सकता; और यदि स्वयं 'प्रसाद' जी भी संकेतात्मकता, लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता से काम न लेते और दुरूहता की ओर न झुकते, तो उन्हें भी नागरिकता की रक्षा करना कठिन हो जाता। वियोग के समस्त व्यापार को केवल 'उखड़ी साँसें' में सकेत कर देना और संयोग की यथार्थता को केवल एक शब्द 'धड़कन' में सुना देना और संयोग के बाद वियोग और वियोग के बाद संयोग का क्रम केवल 'इस उदास मन की अभिलाषा अटकी रहे प्रलोभन में' अर्थात् आज के दुख की उदासीनता आगामी कल की सुख-आशा में सीमित रहे।

'अलि-अलक शक्तियाँ उलझी हों जीवन के भविष्य तम से' अर्थात् आज भर की सामने की अंधेरे कल छिन सकती है, इस दुख का भी ध्यान रहे अपना — 'मेला करें अगणित यंत्रों से सुख-दुख के अनुपातों में' इन उक्तियों द्वारा हृदय में उतार देना क्या कोई सरल काम है? प्रणय-व्यापार की समस्त लीलाओं की जानकारी, उनकी

रुचि का मानसिक ज्ञान और साथ-ही-साथ एकरसात्मकत
आतिशय्य से जो ऊब जानेवाली मानवीय कमजोरी, सभी कुछ
इस कृती-कलाकार ने सामने रख दी हैं। इतना सुन्दर छायावा
उदाहरण कदाचित् ही कहीं देखने को मिले। परंतु स्मरण रहे,
भी कोरा छायावाद है ; रहस्यवाद वस्तु-रूप में स्वीकार
किया गया।

कोरी छायावादी उक्तियाँ पुराने कवियों में भी मिलेंगी। अ
यह न समझना चाहिए कि छायावाद नितांत आज की चीज़
मलिक मुहम्मद जायसी ने एक स्थान पर पद्मावती की वृद्धा
का चित्रण करते हुए लिखा है —

"भँवर छपान हंस परगटा" (जायसी)

'भँवर' से संकेत केवल काले और घुँघराले केशों की ही ओ
है वरन् भ्रमर की स्वभाव-अस्थिरता, उसकी परिस्थिति के अ
वर्तन की सतत भनभनाहट (अर्थात् युवावस्था की अशांति
चिरतन शिकायत) और उसकी सतत परिभ्रमणशीलता
पुष्परागपान की उत्कंठा (भावों में नए उपकरणों द्वारा विल
चिपके रहने की यौवन की चाह) इन सबकी सूचना केवल
'भँवर' दे जाता है और 'छिपने' से यह स्पष्ट हो जाता
युवावस्था की समस्त उद्दाम भावनाएँ और परिस्थितियाँ,
संकेत ऊपर किया गया है, छिप गई हैं।

इसी प्रकार 'हंस' से केशों की वर्ण-धवलता को ही साम
लाया गया है, वरन् हंस की भाँति वयस्क की समझ स
धीरे-धीरे पग रखने का ज्ञान, उसके मोती चुगने में वृद्ध के
विचारों की धारणा तथा (कवि प्रौढ़ोक्ति का लक्षणा द्वारा
क्षीर-नीर-विवेकवाले स्वभाव का संकेत करते हुए) वृद्ध क
परिपक्वता और समझ की गंभीरता तक पहुँचा दिया। ग
परंतु यह भी उक्ति रहस्यवाद की नहीं है, लक्षणा और

बल पर केवल छायावाद खड़ा है।

छायावाद की सार्थकता बहुत बढ़ जाती है, जब वह समष्टि-रूप में रहस्यवाद का अवलम्ब होता है। छायावाद और रहस्यवाद के संयोग के चित्र हिंदी में—विशेषकर नवीन हिंदी में—काफी मिलेंगे। पुराने कवियों में भी एक-दो उक्तियाँ छायावाद की मिलेंगी—

काहे रे नलिनी, तू कुँभिलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपति न ऊपरि आग, तोर हेत कहु कासनि लाग?
कहैं कबीर जो उदक-समान, ते नहिं मूए हमरे जान।

(कबीर)

'अहम् ब्रह्मास्मि' की परिस्थिति न प्राप्त कर सकने के कारण ही मनुष्य दुख भोगता है। कबीर ने उसे पा लिया है। साक्षात्कार हो चुका है। पर तद्रूप भावना का यह चित्र दूसरी आत्माओं को सचेत करने के लिए खींचा गया है।

"जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास" यह उक्ति वैसी है, जैसी कबीर की दूसरी उक्ति—

आदौ गगना अंते गगना, मध्ये गगना भाई (कबीर)

अथवा—

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना............(कबीर)

—रूपकों की पेचीदगी के सहारे छायावाद का प्रश्रय ऊपर लिया गया है और रहस्यमयी भावना की अभिव्यक्ति की गई है। केवल उक्ति-वैचित्र्य पर आश्रित रहस्यवाद भी कबीर में है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

समंदर लागि आगि नदयाँ जल कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूखा चढ़ गई॥ (कबीर)

मानव की सांसारिक परिस्थिति का संकेत समुद्र से करना, इस

दुनियावी मिलावट का संकेत बाहर से आकर समुद्र में मिली हुई नदियों से करना, उद्दीप्त भक्ति भावना—संसार के विषयों को भस्म करनेवाली भावना—को अग्नि द्वारा संकेत करना और तन्मय के लिए ऊपर खिंची हुई आत्मा की अभिव्यंजना रूप पर चढ़ी हुई मछली से करना—इत्यादि छायावाद के अच्छे चित्र हैं। विषय पूर्ण रूप से रहस्यवाद है।

इसी प्रकार केवल प्रतीक-प्रयोग के बल पर ब्रह्मवाद को, हृदयजगत् की तन्मयता के साथ, उक्ति-वैचित्र्य व समूहिक सौंदर्य द्वारा छायावाद का रूप नीचे के पद में दिया गया है—

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकार;
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार।
सृंगी की मिंगी करि डारी पारासर के उदर विदार;
कनफूँका चिद कासी लूटे लूटे जोगेसर करत बिचार।
हम तो बचगे साहब दया से, शब्द-डोर गहि उतरे पार;
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हुसियार।

(कबीर)

दांपत्य-रति ने ऊपर के पद को और भी सरस बना दिया है। "शब्द-डोर गहि उतरे पार" में 'सुरतनाद' के अभ्यास की ओर एक रूखा-सा संकेत है। पर तद्रूप के मुख से निकली हुई यह रहस्यवाद की वाणी अधिक सरस इसलिए नहीं हो पाई, क्योंकि इसका झुकाव अध्यात्मवाद की ओर अधिक है।

वैसे यदि कोई प्रयास करे तो कबीर के कूटों और उलटबाँसियों में कुछ पद छायावाद के [illegible] रहस्यवाद है। वर्तमान कवियों में रहस्यवादी [illegible] कुछ ही कवियों के बन पड़े हैं। [illegible] रहस्यवाद है या कोरा छायावाद [illegible] है। [illegible]

और उनके आलोचकों, दोनों को भ्रम है कि वे इनके प्रवर्तक हैं। कुछ आलोचक तो अलंकार के नवीन प्रयोगों से चमत्कृत होकर उसी को छायावाद कहने लगते हैं। इस संबंध में आगे कहा जायगा। नीचे एक कविता उद्धृत की जाती है—

'तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चचल गति सुर-सरिता,
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कांतकामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शांति।
तुम सुरापान घन अंधकार;
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान;
तुम वर्षों के बीते वियोग
मैं हूँ पिछली पहचान।
तुम योग और मैं सिद्धि।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।
(निराला)

'तुम' और 'मैं' के एकीकरण की ओर उतना प्रयास नहीं है, जितना 'तुम' और 'मैं' की तात्त्विक एकरूपता के सिद्ध करने की ओर है। इन पंक्तियों में द्वैताद्वैत की भावना को काव्य-बद्ध किया गया है। इसी कविता में कवि आगे कहता है—

तुम हो प्रियतम मधुमास
और मैं पिक कल-कूजन तान।
तुम मदन पंचशर-हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान।
तुम अंबर मैं दिग्वसना

तुम चित्रकार घन-पटल श्याम
मैं तड़ित्तूलिका-रचना ॥
तुम रण-तांडव-उन्माद नृत्य
मैं युवति मधुर नूपुर-ध्वनि
तुम नाद वेद ओंकार सार
मैं कवि-शृंगार-शिरोमणि ॥
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति
तुम कुंद-इंदु-अरविंद शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति

(निराला)

छायावाद के क्रोड़ में रहस्यवाद की वस्तु रूप में प्रतिष्ठा सफल हुई है। ऐसी कविताएँ कम मिलेंगी। एक दूसरी कविता नीचे और दी जाती है—

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी!
प्रिय के अनंत अनुराग भरी!
किसको त्यागूँ किसको माँगू,
है एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ, प्रस्तर रसमय!
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकी लहरी।
जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर;
प्रिय के संदेशों के वाहक,
मैं सुख-दुख भेजूँगी भुज भर;
मेरी लघु पलकों में छलकी
इस कण-कण में ममता बिखरी!

अरुणा ने यह सीमन्त भरी;
संध्या ने दी पद में लाली;
मेरे अंगों का आलेपन—
करती राका रच दीवाली!
जग के दागों को धो-धोकर
होती मेरी छाया गहरी!
पद के निक्षेपों से बन में—
नभ का पथ छायापथ बनता
श्वासों से घिर आती बदली
चितवन करती पतझार हार!
जब मैं मरु में भरने लाती
दुख से रीती जीवन-गगरी!

(महादेवी)

ऊपर की कविता में 'अहम्' के विस्तार का रूप यत्र-तत्र स्पष्ट दिखाई देता है। 'अहम्' का रहस्यमय प्रभाव काव्य का प्राण है—

मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ, प्रस्तर रसमय!

संध्या ने पद में लाली भर दी, राका ने अंगों का आलेपन किया, श्वासों से बदली घिर आती है, चितवन पतझार करती है, दु:ख दि छायावादी अभिव्यंजनाओं में रहस्यवाद की ही प्रतिष्ठा दिखाई देती है। पं० माखनलालजी की कृतियों में छायावादी रहस्यवाद के बड़े सुंदर और सुलझे हुए उदाहरण उपस्थित हैं—

अगणित बार समाकर भी
छोटा हूँ यह संसार हुआ।

कदाचित् यह उन्हीं की पंक्ति है।

नवीन कवियों में कभी-कभी अभिव्यंजना के चमत्कार, या यों कहिए कि छायावाद का मोह इतना अधिक हो जाता है कि वस्तु

रूप में स्पष्ट किया हुआ रहस्यवाद पूरा-पूरा स्पष्ट नहीं हो पाता। छायावाद की सूक्ष्मता में वह आलम्बन पर अवलम्बित प्रतीत होता है। रहस्य विवेचना का आधार रहता है। छायावाद का प्रतीक जहाँ एक ओर रहस्यवाद को स्पष्ट, और अभावात्मक बना देता है, वहीं दूसरी ओर छायावाद की व्याख्या उसे विस्तीर्ण भी कर देती है। प्रसाद के पदों में जो कुछ ऐसे अंश उपलब्ध हैं, जिनमें रहस्यवाद और छायावाद का बहुत ही सुन्दर समन्वय मिलेगा। उदाहरणार्थ—

निर्झर कौन बहुत बल खाकर बिलखाता ठुकराया फिरता।
खोज रहा है स्थान धरा में, अपने ही चरणों में गिरता।

(प्रसाद)

जिस प्रसंग में ये पंक्तियाँ आई हैं, वहाँ रहस्यवाद को वस्तुरूप से प्रस्तुत करके कार्य-भार करने का कवि का कोई अभिप्राय नहीं था, फिर भी वेदान्त के अद्वैतवाद की सुन्दर भावमय अभिव्यंजना का सम्बन्ध ऊपर की पंक्तियों को पढ़ने में स्वाभाविक हो गया है और साथ-ही-साथ छायावाद का उदाहरण भी बन पड़ा है।

शान्ति की प्राप्ति का इच्छुक, 'प्रेम' की तलाश में, आत्मा न-जाने कहाँ-कहाँ मारा मारा घूमता है, कितने कष्ट झेलता है, अपने से बाहर उस की शान्ति प्राप्ति के लिए ढूँढ़ा करता है।

अन्त उसे वास्तविक शान्ति तभी मिलती है, जब वह अपने को 'अहम् ब्रह्मास्मि' समझकर सारी पूजा-अर्चना और श्रद्धा का केंद्र बनाता है और अपने ही चरणों पर भक्ति के फूल बिखेर देता है। 'सोऽहम्' की परिस्थिति हो जाती है। इसी भावना का निर्झर के प्रतीक द्वारा बड़े अनूठे ढंग से व्यक्त किया गया है। 'बहुत बल खाना', 'बिलखना', 'ठुकराना', 'खोजना', 'अपने चरणों में गिरना', ये समस्त क्रियाएँ वाच्यार्थ देकर लाक्षणिक अर्थ का संकेत करते हुए

एक समूची रहस्यमयी परिस्थिति व्यंग्य करती है। यही व्यन्यार्थ इन पंक्तियों का प्राण है।

छायावाद के रूप को और अधिक समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसका और अलंकारवाद का स्थूल भेद समझ लें। नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं, जहाँ न छायावाद है, और न रहस्यवाद—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल
अपलक अनंत, नीरव भूतल
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल,
तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-विरल
लेटी है शांत, क्लांत, निश्चल।
तापस-बाला-सी गंगा कल
शशि-मुख से दीपित मृदु करतल
लहरें उर पर कोमल कुंतल
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर,
लहराता तार-तरल सुंदर
चंचल अंचल-सा नीलांबर
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर
शशि की रेशमी-विभा से भर
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर। (पंत)

ऊपर की कविता में छायावाद नहीं है; रहस्यवाद भी नहीं है। केवल दृश्य की मूर्तिमत्ता बड़ी स्पष्टता और विदग्धता से खड़ी की गई है। कवि का पर्यवेक्षण बड़ा सूक्ष्म है और वह स्वरूप को जैसे का तैसा चित्रित कर देने में बड़ा पटु है। उपमाओं में अधिकतर नवीनता है और उनका भावसादृश्य दोनों मिलकर चित्र के हृदय-प्रवेश में बड़ी सहायता देते हैं। इसी प्रकार एक दूसरे कुशल कलाकार का चित्र देखिए—

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी !
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु-मुकुल-नवल-रस गागरी !
अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बंद किये—
तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री ! (प्रसाद)

सजीव श्री ... के साथ प्रातःकाल का इतना मूर्तिमान और सजग वर्णन बहुत कम देखने में आता है। नेत्र खोलकर कवि ने प्रातःकाल को देखा है। यह उस वर्णन का अवसान—

"तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री !"

—इन पंक्तियों ने सारे वातावरण का प्रकृति के इस निरीक्षण के साथ अद्भुत संबंध दिखलाया है और चित्र को सजीवता के लिए और अधिक सफल बना देता है। ... 'प्रसाद' ने छायावाद को नहीं अपनाया। वस्तुतः यह तो स्पष्ट प्रातःकाल-वर्णन है, अतएव रहस्यवाद का कोई प्रश्न नहीं उठता।

एक और कविता आगे दी जाती है। बिना ध्यान से पढ़े हुए लोग इसे रहस्यवादी कविता कहने की भ्रांति कर सकते हैं। एकाधिक आलोचकों ने ऐसा किया भी है। कुछ शब्द ऐसे आ गए हैं, जिन्हें यदि उपमा के रूप में न लेकर ध्वन्यात्मक समझा जाय, तो यह भूल हो सकती है।

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत रे बलि वध के सुंदर जीव,
उच्च कठोर शिखर के ऊपर है मंदिर की नींव
बड़े-बड़े ये शिलाखंड मग रोके पड़े अचेत।
इन्हें लाँघ तू यदि जाना है तुझे मरण के हेत;
ऊपर अगम शिखर के ऊपर मचा मृत्यु का रास;
नीचे उपत्यका में, जीवन पंकिल का है त्रास।
चढ़ चल, चढ़ चल थक मत रे तू बलिदानों के पुंज,
देख कहीं न लुभावे तुझको यह जीवन की कुंज;
मधुर मृत्यु का नृत्य देख तू देने लग जा ताल
अपना सीस पिरोकर कर दे पूरी मा की माल,
है जीवन अनित्य, कट जाने दे तू मोहक बंध,
कर दे पूरा आत्म-निवेदन का तू आज प्रबंध।

(नवीन)

कवि की स्पष्ट पुकार देश-सेवा है। बलि-पशु से देश-सेवक की कठिनाई, उसकी तपस्या और बलिदान को व्यक्त किया गया है। यह कहता है—

"अपना सीस पिरोकर कर दे
पूरी मा की माल।"

यहाँ मा स्पष्ट रूप में भारतमाता के लिए कहा गया है। अतएव जितने पद भी ऐसे मिलें, जिनके कारण आत्मा के परमात्मा तक आरोहण की कठिनता भासित हो, उन्हें प्रयोग समझकर एक झटके के साथ नीचे उतार लेना चाहिए और वाच्यार्थवाला सीधा-सादा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस कविता में किसी प्रकार का रहस्यवाद नहीं है। केवल देश-प्रेम को उद्दीप्त किया गया है।

नीचे की कविता में रहस्यचिन्तन के साथ-साथ भाव-चित्रण की रक्षा की गई है—

प्रिय मुंदित दृग खोलो !
गत स्वप्न-निशा का तिमिर-जाल नव-किरणों से धो लो—
मुंदित दृग खोलो ।
जीवन-प्रसून वह वृंतहीन खुल गया उषा-नभ में नवीन,
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर बह चलीं चतुर्दिक् कर्म लीन
तुम भी निज तरुण-तरंग खोल नव अरुण-संग हो लो—
मुंदित दृग खोलो ।
वासना-प्रेयसी बार-बार श्रुति-मधुर मंद स्वर से पुकार
कहती, प्रतिदिन के उपवन के जीवन में, प्रिय, आई बहार
बहती इस विमल वायु में वह चलने का बल तोलो—
मुंदित दृग खोलो ।

(निराला)

'निरालाजी' की इस कविता में अभिव्यंज[illegible] निरीक्षण और भाषा प्रयोग-कौशल पर आश्रित है [illegible] नहीं। कविता के संकलित सौंदर्य का प्रभाव उसकी [illegible] और मूर्तिमत्ता पर आश्रित है ।

एक कविता को और उद्धृत करके अब यह [illegible] [illegible]

मुझको भी इस शुभ्र ज्योति में मज्जित कर लो अपने साथ।
हे सुवर्णमय, तुम मानस में कमल खिलाते हो सुंदर,
मेरे मानस में भी उसके विकसा दो पद-पद्म अमर।
और नहीं तो अपना ही-सा मुझको भी सधा जीवन
दे खीचे-मग-गामी, दे दो, दिव्य अप्रकट-गुण पावन।

(पंत)

इस कविता की पुकार सूर्य के प्रति है। वाच्यार्थ का प्रयोजन उसी के लिए है। परंतु स्थान-स्थान पर कुछ ऐसे शब्द आ गए हैं, जिनके कारण एक व्यंग्यार्थ का भी आरोप होता चलता है। उसका विषय भगवान् हो सकता है। अतएव यहाँ पर समासोक्ति अलंकार की पुष्टि दिखाई देती है। व्यंग्यार्थ का विषय अध्यात्म है, परन्तु वस्तु-रूप में रहस्यवाद नहीं है। अतएव इस कविता को रहस्यवादी कहना भूल है।

अभिव्यंजना-पक्ष में केवल समासोक्ति का अंचल पकड़ने से कोई कविता छायावादी नहीं कही जा सकती। छायावादी कविता की और विशेषताएँ इसमें नहीं हैं। अतएव यह छायावादी कविता भी नहीं है। वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों पक्षों का अर्थ स्पष्ट है। कहीं-कहीं श्लेष द्वारा और कहीं-कहीं लक्षणा द्वारा शब्दों में अर्थों का द्वैत निकाला गया है। कुछ शब्द अथवा वाक्य एकपक्षीय हैं। उनकी प्रतीति या तो वाच्यार्थ में होती है या व्यंग्यार्थ में, उभय पक्षों में नहीं। उदाहरणार्थ—

'अरुण अधखुली आँखें मलकर'
'बना हिमाचल हेमालय'

अंतिम पंक्तियों में तो बिल्कुल अंतिम पंक्ति छोड़कर पूरा झुकाव वाच्यार्थ की ही ओर हो जाता है। व्यंग्यार्थ की हलकी-से-हलकी व्यंजना भी विलीन हो जाती है। 'पद-पद्म-अमर' कहकर तो ऐसे [illegible] रूप में खुलकर व्यंग्यात्मकता से पीछा छुड़ा लिया गया है

—तो इस उक्ति में कपोल भी हैं, नेत्र भी हैं, पुतली का संचालन भी है, अश्रु भी हैं; अतएव रूपसादृश्य के ध्यान से यह उक्ति एक बड़े कारुणिक प्रसंग में अदोष हो सकती है, और यदि भावसादृश्य की ओर विचार किया जाय, तो भी कोमलता के भार के कारण भावों की भी सुकुमार उद्भावना होती है, परंतु यदि कवि ऊहा के फेर में पड़कर छायावादी बनने की धुन में उक्ति में यों हेर-फेर कर दे—

पुष्प का हृदय चीरकर भ्रमर ओस के मोती निकालता है और गुलाब के लिए हार गूँथ-गूँथकर पहना रहा है।

—तो इस उक्ति में "चीरने और गूँथ-गूँथकर पहना" में जो ने "सजग प्रयत्न" का भाव आ गया है, वह रस की तन्मयता के लिए घातक है। ऊहा से अत्यधिक काम लिया गया है। जो आनंद-विस्मरण भाव-विभोरता में होना चाहिए, वह सजगता के उद्दीप्त हो जाने से नष्ट हो जाता है। शृंगार भावविहीन होकर रसाभास हो जाता है। हास्य उत्पन्न हो जाता है। छायावादी कवियों को, जो अलंकार की गूढ़ निबंधना के पोषक हैं ऐसे दोष से बचना चाहिए।

—प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी
(माधुरी जून १९४०)

छायावाद में प्रकृति-चित्रण

यद्यपि 'रहस्यवाद' या 'छायावाद' उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी कविता, तथापि इस नाम का नए सिरे से, नए रूप में और नए वातावरण में प्रचार होने से इसके साथ नूतनता का अव्यभिचारी सामंजस्य-सा हो गया है। और, इसमें संदेह नहीं कि हमारी नवीन रहस्यवाद की कविताओं पर पश्चिमीय शेली, कीट्स आदि रहस्यवादी कवियों की भावनाओं की प्रत्यक्ष छाप लगी है। किंतु इसमें भी संदेह कि कवींद्र रवींद्र की अप्रतिम प्रतिभा ने अपने तथा अपने देश और समाज के विस्तृत वातावरण में उन भावनाओं को इस प्रकार रँग दिया कि वे अब हमारी मौलिक संपत्ति हो चुकी हैं। उसी प्रकार हिंदी में भी ऐसे मौलिक रहस्यवादी कवियों का क्रमशः संतोष-जनक विकास हो रहा है, जो अपनी कृतियों और मनोवृत्तियों द्वारा एक अपूर्व युग का सृजन करने में अग्रसर हो रहे हैं।

रहस्यवाद को दो विस्तृत विभागों में देखा जा सकता है—

(१) दार्शनिक रहस्यवाद

(२) कवि सम्मत

(१) दार्शनिक रहस्यवाद की व्याख्या यों की जा सकती है—

रहस्यवाद "विचार-धारा अथवा संभवतः भावना का वह प्रकार है, जो स्वभावतः किसी निश्चित परिभाषा के अयोग्य-सा ही हो। इसका आविर्भाव उस दशा में होता है, जब मानव-मस्तिष्क

परमात्म-तत्त्व अथवा पदार्थों को चरम सत्ता का [illegible] उस परम सत्ता से संपर्क का आनंद लूटने को [illegible] ऐसी चेष्टाओं ने भारत में मुख्यतः निम्नलिखित [illegible] का जन्म दिया—

(क) बौद्ध शून्यवाद (Nihilism)

(ख) ब्राह्मणीय सर्वात्मवाद (Pantheism)

फारस का सूफी मत भी आध्यात्मिक रहस्यवाद के अंतर्गत आता है, और हाफिज तथा सादी कवियों ने अपनी कविता में इसे सन्निविष्ट किया है। पश्चिम में ग्रीस में, ईसा की पहली दो-तीन शताब्दियों में रहस्यवाद ने फलने-फूलने के लिए उचित क्षेत्र पाया था, और नव-प्लतुवाद (Neo-platonism)—जिसके प्रचारकों में प्लॉटिनस प्रधान था—ने इसे अपनाया था। मध्ययुग में भी योरप में सेंट बर्नार्ड आदि दार्शनिकों ने रहस्यमय भावनाओं की शरण ली थी। उनकी विचारधारा—"अपने को किसी प्रकार खो देना, मानो तुम रह ही न जाओ, और तुम्हारी अपनी चेतना का बिलकुल लुप्त हो जाना—अपने में से आप खाली हो जाना, नहीं हो जाना—यह है भगवान् के साथ संलाप। इस प्रकार प्रभावित होना क्या है, मानो भगवान् के साथ एक हो जाना। ....सो उस परम पावन परमात्मा के [illegible] सारी भावनाओं [illegible] अपने में ही एक अवर्णनीय रूप में विलीन हो जाना अनिवार्य है, जिसमें वे सर्वतोभावेन परमात्मा की ही इच्छा में परिणत हो जायँ।"

भाव-भेद और प्रगति-भेद से रहस्यवादियों के चार प्रकार माने गए हैं—

(क) भक्ति-उपासक (Devotional mystics)

(ख) तार्किक (Rational mystics)

(ग) प्रकृति-उपासक (Nature mystics)

(घ) प्रेमोपासक (Love mystics)

(२) किंतु दार्शनिक रहस्यवाद की चर्चा हमारे लिए विषयांतर होगी, अतः कवि-सम्मत रहस्यवाद के रहस्य का उद्घाटन ही हमारा ध्येय होगा।

हिंदी में आदिम रहस्यवादी कवि हुआ है कबीर; यद्यपि कबीर के रहस्यवाद और अब के रहस्यवाद में एक अंतर है। कबीर का रहस्यवाद संतोषमय है, हमारा असंतोषमय। कबीर ने भौतिकता पर लात मारकर काल्पनिक रहस्यमयता का आश्रय लिया था, हम भौतिकता की असफल कामना से हार मानकर, लाचारी काल्पनिकता का आश्रय लेकर उसमें 'खट्टे अंगूर कौन खाय'—वाली बेबसी की संतुष्टि धारण करने की कोशिश करते हैं। यही बात कीट्स और शेली के संबंध में थी। दोनो के जीवन दुखद थे; असंतोष-पूर्ण थे। वही नवयुवक कीट्स, जो एक दिन 'वासनाजन्य जीवन' के सम्मुख 'विचारमय जीवन'* का तिरस्कार करता था, जिसका धर्म था सांसारिक प्रेम, और सांसारिक प्रेम ही जिसका कर्म† था, वही, वही छब्बीस वर्ष का नवयुवक कीट्स आज मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ असंतोष की विषम ज्वाला में जलता है, और उस घड़ी की कल्पना करता है, "जब प्रेम और ख्याति अनस्तित्व में विलुप्त हो जाती‡।" आह! कितना भीषण असंताप! कितनी दर्दनाक कसक! शेली! जब तूने यह गाया था

मधुरतम वे ही हमारे गान हैं;
विधुरतम जिनमें भरे अरमान हैं×।

---

* "O, for a life of sensations rather than of thoughts."

† "Love is my religion... my creed is love."

‡ "Till love and fame to nothingness do sink."

× "Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts."

तब क्या तूने अपने बेबस कलेजे को फुसलाने की कोशिश न की थी? मनुष्य एक विचित्र पहेली है, प्रकृति से ही वह शांति-प्रिय है, किंतु प्रकृति से ही वह इतना सीमित है कि उसे सच्ची शांति प्रायः मिलती ही नहीं। उसकी भौतिकता उसकी काल्पनिकता का बड़े वेग से पीछा करती है, किंतु कभी पार नहीं पाती। और मनुष्य हार भी मानना नहीं चाहता। अतः अपनी भौतिकता की सीमा को काल्पनिक निःसीमता के रूप में उसकी सांतता को काल्पनिक अनंतता के रूप में, परिणत करना चाहता है, और इस प्रकार वह उस शांति को पाना चाहता है, जिसकी खोज उसकी प्रकृति का एक अनिवार्य अंग है। इस चेष्टा में सफलता-पूर्वक मनुष्य जिस काव्यमय भावना-संसार का निर्माण करता है, उसका रहस्यमय होना निश्चित है, क्योंकि वह निरा भौतिक और निरा काल्पनिक न होते हुए भी दोनों का अपूर्व समन्वय है ही।

(ख) इस अपूर्व रहस्यमय समन्वय का एक व्यापक निदर्शन है प्रकृति में प्रेयसी का आरोप अथवा मानव और मानवेतर जीवन में तादात्म्य भावना। जिस समय कवि गाता है—

निर्झर सरिता में जा मिलते, सरिताएँ जा सागर में,
गगन पवन मिलते हैं आकर मधुर भावना अंतर में।
कोई नहीं विश्व में विरही, सभी बँधे दैवी क्रम से;
मिलते-जुलते सब भावों में, क्यों न मिलूँ मैं भी तुमसे?*

उस समय वह प्रकृति के पदार्थों में मानवीय आवेगों का अध्यारोप करता है अर्थात् मानव-जीवन मानवेतर जीवन में तादात्म्य की कल्पना करता है। इसी प्रकार पंत जी—

* The Fountains mingle with the River
And the Rivers with the Ocean,
The Winds of Heaven mix for ever

सैन एकोना-भू-मुस्कान—शैल की मूर्ति सी वारंवार—
हिला हरियाली का सुदुकूल झुला झरनों का झलमल हार ;
जलद-पट से दिखला मुख चंद्र पलक पल-पल चपला के मार,
भग्न उर पर भूधर सा हाय ! सुमुखि ! धर देती है साकार !

इन पंक्तियों में प्रकृति-सुंदरी में 'सुमुखि' का रूप देखा गया है ; प्रकृति-सुंदरी की सत्ता में 'सुमुखि' की सत्ता विलीन हो चुकी है। देखिए श्रीमती महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ —

तारकमय नव - वेणी - बंधन ,
शीशफूल कर शशि का नूतन ;
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन ;
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ आ वसंत-रजनी !

जिनमें 'वसंत-रजनी' में उन्हीं आभरणों का मान किया [illegible] है, जिनसे हम किसी रमणी को सजाते हैं।

प्रकृति में प्रेयसी का आरोप अनादि काल से, अथ[illegible] कविता है, तबसे होता चला आ रहा है ; किंतु फिर भी इस [illegible] सभी आरोपों को हम छायावाद या रहस्यवाद में परिगणित [illegible] और इसके विश्लेषण के उद्देश्य से कविता का विशिष्ट प्र[illegible] निम्नलिखित 'वादों' में विभक्त करेंगे, और प्रत्येक की [illegible] करने का प्रयत्न करेंगे। वे ये हैं—

With a sweet emoti n ;
Nothing in the world is single ;
All things by a law divine,
In one spirit meet and mingle ;
Why not I, with thine ?

—Shelley.

१ वस्तुवाद
२ चित्रवाद } अथवा केवल वस्तुवाद (१),

३ बिंबवाद
४ छायावाद } अथवा केवल छायावाद (२)

वस्तु होती है ठोस, और होती है उसमें लंबाई, चौड़ाई, गहराई तीनों, किंतु चित्र में लंबाई, चौड़ाई तो होती है, गहराई नहीं होती। फिर भी चित्र वस्तु की नकल हुआ करती है और चित्र में उसी स्थूलता की प्रतीति की जाती है, जो वस्तु में विद्यमान होती है। वस्तु और चित्र इयत्ता का भेद है किंतु ईहक्ता का नहीं। अतः वस्तुवाद और चित्रवाद, इन दोनों को हम वस्तुवाद में ही समाविष्ट करना उचित समझते हैं। स्थूल पदार्थों का स्थूल रूप से चित्रण वस्तुवाद कहा जायगा। और, इसके उदाहरण हमारी प्राचीन प्रायः सभी कविताएँ हैं। यथा सूर का बाल-रूप वर्णन—

जसुमति मन अभिलाषु करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दंत दूध के देखौं, कब तुतरे मुख बैन झरैं।
कब नंदहिं कहि बाबा बोलै, कब जननी कहि मोहि ररै।

जिसमें स्थूल बाल-रूप का स्थूल और स्पष्ट चित्रण किया गया है†। ऐसे ही हैं तुलसी के वानर-वर्णन अथवा भारतेंदु के तरणि-तनूजा अथवा गङ्गा के वर्णन। इस वस्तुवाद की कविता में भी प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप होता है, और होता चला आ रहा है।

---

† इस वर्णन के साथ रवींद्र के शिशु का वर्णन मिलाइए, और देखिए, रवींद्र का शिशु कितना रहस्यप्रिय और रहस्यमय है, अपने दादा (बड़े भाई) से कितना अधिक चतुर और तत्वज्ञ है—

किंतु उसे हम छायावाद नहीं कहेंगे, क्योंकि वह आरोप उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों और लाक्षणिकता का परिणाम है। उस आरोप में इतनी ताकत नहीं कि मानव और मानवेतर जगत् में अभेद स्थापित कर सके, क्योंकि कवि की कल्पना रमणी के सौंदर्य को तिरस्कृत करके प्रकृति के सौंदर्य की उपासना नहीं कर सकी थी, रमणी को निरलंकृत करके प्रकृति को सिंहासनासीन करने में असमर्थ थी। इसमें संदेह नहीं कि जिस समय कालिदास कहते हैं—यदि पशुओं में लज्जा होती, तो पार्वती के केश-पाश को देखकर चमरी गौएँ अपने बालों से प्रेम करना छोड़ देतीं, उस समय वह मानवेतर हृदय में मानव-सुलभ-लज्जा का आरोप करते हैं। किंतु फिर भी हम इस कविता को छायावाद की श्रेणी में ऊपर उठने नहीं दे सकते। इस आरोप में स्थूलता है, कठिनता है, लेश-मात्र भी रहस्यमयता नहीं। आलंकारिकता है, कृत्रिमता है, किंतु अभेद की प्राकृतिकता नहीं। इस श्रेणी में हम निजावलि की यह कविता

शुने दादा हेसे केनो
बोलेन आमाय "खोका
तोर मतो आर देखी नाइ तो बोका।
चाँद जे थाके अनेक दूरे
केमन करे छुँइ।"
आमी बोलि—दादा, तुमी
जानो ना किच्छुइ
मा आमादेर हासे जखन
अइ जानलार फाँके,
तखन तुमि बोलबे कि मा
अनेक दूरे थाके!"
तबू दादा बोले आमाय—"खोका,
तोर मतो आर देखी नाइ तो बोका।"

जिनमें कवि हृदय की मन्द मधुरी और उद्दाम सौंदर्य देख-देखकर गाते-गाते नहीं थकता।

अथवा निम्नलिखित—

टेसा झुके कारे आलिमा लाली
नाचें जुड़िया बनाए जावे,
कुसुम-किसला कुसुम रमणी
सिरपै आनन झिरिरि झरनी
झलमलैं, होवे अलग टोरा
अलिया पड़िया जावे।

जिसमें कुसुम-रमणी की लज्जा, उसकी सिहर और उसका म्लान होकर पतन एवं अवसान इस पद्य-निबन्ध में वर्णित है, जिसमें हम कुसुम और रमणी के भेद का भान कर ही नहीं पाते। कवि की प्रतिभा ने अपने जादू के डंडे से छूकर कुसुम को रमणी बना डाला, और इतनी खूबसूरती से कि हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। देखते हुए भी विभोर हो जाते हैं, समझते हुए भी ठिठक-से जाते हैं; हमारा अलंकारों का ज्ञान काम नहीं आता। यही रहस्यमयता इस कविता की विशेषता है। "छायावाद की कविताएँ व्यंजना और ध्वनि-प्रधान होती हैं।" और, इसी के बल पर वह वस्तुवाद की संकुचित परिधि से निकल छायावाद के विस्तृत व्योम में विहार करने लग गई है।

यहाँ हम यह उचित समझते हैं कि जिस प्रकार वस्तु और चित्र का अंतर दिखलाया गया है, उसी प्रकार बिंब और छाया में भी दिखलाया जाय। जब मानव-हृदय पर मानवेतर प्रकृति प्रतिफलित हो, तो वह प्रतिफलन बिंब होगा, और इसके विपरीत जब मानवेतर प्रकृति पर मानव-मनोवृत्ति प्रतिफलित हो, तो वह प्रतिफलन छाया होगी। प्रथम अर्थात् बिंबवाद का उदाहरण जिसमें मानव-हृदय आधार हो और मानवेतर प्रकृति आधेय—

पत्ते में मैं पत्ती बनकर कभी-कभी था लहराता ;
फूलों की फिर पंखुड़ी होकर कभी-कभी हँसता जाता ,
किंजल्कों में बैठ, प्रमुद हो करता अपना ही दर्शन ;
कहीं बैठता, कहीं सोचता, करता सिद्ध कहीं साधन ।
विश्व-विजय करने के हित मैं विश्व-राग मन से गाता ;
विश्व रूप मेरा धारण कर मेरे सम्मुख आ जाता—
मेरे भावों का मुझमें ही प्रतिबिंबित होकर आना ;
मैं ही दर्पण, दृश्य-ज्योति मैं, दर्शक मेरा बन जाना ।

द्वितीय अर्थात् छायावाद का उदाहरण, जिसमें प्रकृति आधार हो, और मानव-मनोवृत्ति आधेय—

कैसी अखंड यह चिर-समाधि ! यतिवर ! यह कैसा अमर ध्यान ?
तू महा शून्य में खोज रहा किस जटिल समस्या का निदान !
उलझन का कैसा विषम जाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल ! ('दिनकर')

उपर्युक्त पंक्तियों में 'हिमालय' में यतिवर-हृदय का आरोप किया गया है। अथवा रवींद्र की ये पंक्तियाँ —

तारि मुख देखे-देखे आंधार हासिते सेखे
तारि मुख चेये-चेये करे निशि अवमान
सिहरि उठे रे वारि दोले रे दोले रे प्रान

जिनमें अंधकार हमारे ही समान हँसना सीखता है, और सलिल सिहर उठता है। अथवा पंत की उक्ति छाया के प्रति—

कौन-कौन तुम परिहित वसना, म्लान-मना, भू-पतिता-सी !
धूलि-धूसरित, मुक्त-कुंतला किसके चरणों की दासी ?
अहा ! अभागिन हो तुम मुझ-सी सजनि ! ध्यान में अब आया,
तुम इस तरुवर की छाया हो, मैं उनके पद की छाया ॥

—प्रो० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी
(सुधा, ५ अगस्त, १६३६)

आधुनिक कविता में छायावाद*

साहित्य की परंपरा में लक्षण-ग्रंथों का निर्माण, लक्ष्य-ग्रंथों के सृजन के उपरांत, उन्हीं का आधार लेकर हुआ करता है। पहले साहित्य की सृष्टि हो जाती है, पीछे उसकी समालोचनाएँ लिखी जाती हैं। नाट्य-शास्त्रकार भरत मुनि से लेकर हिंदी के पिछले खेवे के अलंकार-शास्त्रियों तक, सबने इसी नियम का पालन किया है। इसका यह मतलब नहीं कि समालोचक अपने आलोच्य विषय के बंधन में जकड़ा रहे, उसे स्वतंत्र रीति से कुछ कह सकने का अधिकार ही न हो; परंतु इसका यह भी मतलब नहीं कि मूल विषय से तारतम्य छोड़ स्वच्छंदगामी अप्रामाणिक कल्पनाएँ की जायँ, और ऐसे सिद्धांतों का संग्रह किया जाय, जो प्रस्तुत विषय से एकदम असंबद्ध हों। हिंदी में अब तक यही हो रहा है। छायावाद के संबंध में जितने लेख देखने में आए हैं, सबमें बातें तो बड़ी-बड़ी कही गई हैं; पर कहीं तो गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों की उलझन में पड़कर प्रकृत विषय का परित्याग कर दिया गया है, कहीं क्लिष्ट कल्पनाओं की व्यर्थ उद्भावना की गई है, और कहीं योरपीय साहित्य की समालोचनाएँ हिंदी के छायावाद के संबंध में चरितार्थ की गई हैं।

---

* [यह लेख सन् १९[illegible] को 'माधुरी' के विशेषांक में प्रकाशित हुआ था। उन दिनों लेखक विद्यार्थी-जीवन में ही थे। उस समय तक छायावाद काव्य के संबंध में बहुत थोड़ी विवेचना हुई थी और अधिकांश विद्वान् उसके विरोध में ही थे। लेखक ने इस लेख में छायावाद काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है।]

छायावाद के संबंध में लिखते हुए हिंदी के उदीयमान समालोचकों ने बड़ी-बड़ी आतंककारिणी बातें कह डाली हैं। छायावाद किसी विश्वव्यापी आंदोलन का एक अंग है। उसका संबंध समस्त संसार को आप्लावित कर देनेवाली किसी वेगवती साहित्य-धारा से है। उसकी गणना उन दो-एक आध्यात्मिक जागृतियों के समकक्ष होनी चाहिए, जिनके कारण समाज का जीवन-स्रोत कुछ-का-कुछ हो जाता है, और जो संसार के इतिहास में अनेक बार नहीं आई—ये और ऐसी ही अन्य बातें बड़ा सुगमता के साथ एक ही साँस में कह डाली गईं। इतना ही नहीं, जब जबान बेलगाम हुई, तब आप 'हिंदी के उमर खैयाम हैं, आप रवींद्रनाथ से कम नहीं हैं, आप ऐसे हैं; और आप वैसे हैं' की अनर्गल व्यंजना के साथ 'इनमें नब्बे प्रतिशत रहस्यवाद है, ये हृदयवादी हैं, ये प्रतिबिंबवादी हैं, ये संकेतवादी हैं' की सांप्रदायिकता भी आ मिली, और अपनी-अपनी डफली से अपना-अपना राग अलापा जाने लगा। यह एक बहुत बड़ी साहित्यिक उच्छृंखलता का काल था; और अब भी वह दूषित वायुमंडल हमारे साहित्याकाश से दूर हो गया है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

जहाँ एक ओर इस प्रकार की बात की करामात दिखाई जा रही थी, वहीं समालोचकों की एक शैली ऐसी भी थी, जिसमें कुछ तो परंपरागत संस्कारों के वशीभूत होकर और कुछ बढ़ती हुई उच्छृंखलता से क्षुब्ध होकर नवीन कविता का विरोध किया और यहाँ तक लिखा कि छायावाद में कोरी नकल-ही-नकल है, रवींद्रनाथ शेली और कीट्स के अतिरिक्त उसमें कुछ है ही नहीं, उसकी सृष्टि अनधिकारियों ने की है, जिन्हें न व्याकरण के नियमों की परवाह है, और न छंद-शास्त्र का लेश मात्र ज्ञान है। घात-प्रतिघात के नियमों के अनुसार यह स्वाभाविक ही था कि एक दल द्वारा अत्यधिक प्रशंसित कविता को दूसरे दल द्वारा अत्यधिक कुत्सित प्रदर्शित करने

यही व्यवस्था यहाँ भी लग सकती, यहाँ साहित्यिकता स्वरूप-अवलोकन का प्रश्न नहीं है। किसी वस्तु का स्वरूप-प्रत्यक्षीकरण, उसके अंग-प्रत्यंग के अवलोकन-पूर्वक उसका संश्लिष्ट चित्र खड़ा कर देने से हो सकता है। संश्लिष्ट योजना पर मैं अधिक ज़ोर देता हूँ। जिस प्रकार किसी साहित्य के स्वरूप-प्रत्यक्षीकरण में उसके विविध ग्रंथों और लेखकों का नाम ले लेने-भर से काम नहीं चल सकता, उसके अन्तर्हित कौन-कौन-सी धाराएँ हैं, जिनसे उसका निर्माण हुआ है, भिन्न-भिन्न धाराओं ने उसको कैसी-कैसी देन दी है, उसमें किस प्रकार के गुणों की कमी और किसकी प्रचुरता है, किस युग में कैसी प्रवृत्ति है, उसकी पोषक धाराएँ कैसे जल से सींची जाती हैं, साहित्य की वर्तमान अवस्था कैसी है और भविष्य में कैसी रहने की संभावना है — इन सब बातों के दृष्टिकोण से ही उसका स्वरूप-प्रत्यक्षीकरण संभव

,उसी प्रकार छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करने में भी उसकी उत्पत्ति की परिस्थितियों, उसकी विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं, उसके विकास-क्रम, उसकी वर्तमान अवस्था तथा भविष्य के सभावित स्वरूपों आदि का विवेचन आवश्यक है। हाँ, इस विवेचन में निरंतर ध्यान रखने की बात यह होगी कि जैसे हाथ, पैर, नाक, कान आदि शरीर के अनेक अवयव एक शरीर के संघटन में अपनी सार्थकता रखते और एक मन का संचालन स्वीकार करते हैं, वैसे ही छायावाद के स्वरूप-प्रत्यक्षीकरण में सहायक बाह्य उपकरणों को मूल-भूत उस चैतन्य सचालिका शक्ति का सम्यक् प्रदर्शन हो, जिसके वशीभूत ये सारे बाह्य उपकरण हैं। अन्य शब्दों में, छायावाद की विविध प्रवृत्तियों के समीकरण—उनके समन्वय का प्रयास भी यथासंभव होना चाहिए, अन्यथा बिगड़े परिवार के विविध व्यक्तियों की तरह वे सब विशृंखल रहकर किसी उच्च उद्देश्य की पूर्ति न कर सकेंगी।

फ्रांस की जगत्प्रसिद्ध राज्यक्रांति का कारण पूछने पर एक दूरदर्शी पंडित ने बाबा आदम को ही सारी खुराफात की जड़ बतलाते हुए कहा था कि यदि उसने शैतान के बहकावे में आकर वर्जित फल न चख लिया होता, तो पृथ्वी पर न तो पाप का प्रवेश होता, और न फ्रांस की राज्यक्रांति होती। वास्तव में पंडित की सूझ बड़ी दूर की थी। हिंदी में छायावाद की उत्पत्ति का अनुसंधान करते हुए कुछ समालोचकों ने भी ऐसी ही दूरदर्शिता दिखलाई है। वे कहते हैं—जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जिनमें मनुष्य की आत्मा अपने अस्तित्व का विस्मरण कर विश्वात्मा में लीन हो जाती है, उन कुछ क्षणों में उसकी जैसी कुछ भावनाएँ होती हैं, उन्हें जब काव्य का स्वरूप मिलता है, तब वही रहस्यवाद या छायावाद कहलाता है। कहने का मतलब यह कि यदि मनुष्य के जीवन में कुछ क्षण ऐसे न होते, जिनमें वह विश्वात्मा के साथ अपनी एकरूपता का अनुभव करता है, तो हिंदी में जो छायावाद की कविताएँ दिखाई देती हैं, वे न दिखाई देतीं। कितनी अकाट्य

उक्ति है ! कितनी बड़ी बलंदपरवाज़ी ! इसमें कितनी दार्शनिकता है !

परंतु फ्रांस की राज्यक्रांति के बाबा आदम से भी बड़े-बड़े कारण थे जिनका उल्लेख आज डेढ़ सौ वर्षों से सैकड़ों प्रसिद्ध इतिहास-लेखक करते आ रहे हैं। तत्कालीन राज्यशासन की नृशंसता, क्रांतिकारी विचारों के प्रचार से उत्पन्न सामूहिक जागृति, उपयुक्त संयोग, आदि-आदि अनेक कारण बतलाए जा चुके हैं, और अब तक अनुसंधानों का क्रम बना हुआ है। यह ऐतिहासिक विचारधारा है। छायावाद की उत्पत्ति पर विचार करने के लिए उपर्युक्त दार्शनिकता की अपेक्षा हमको इस प्रकार की विचारधारा की आवश्यकता अधिक है। यदि सच पूछा जाय, तो हमारे दार्शनिक समालोचक जिसे छायावाद या रहस्यवाद कहते हैं, उसका अस्तित्व हमारी आधुनिक कविता में इतना अधिक नहीं कि उसके सामने अन्य प्रकार की कविताएँ (जो छायावाद की कविताएँ कहलाती हैं, पर दार्शनिक छायावाद से जिनका कोई संबंध नहीं) नगण्य हों, या गौण स्थान की अधिकारिणी हों।

जिस दिन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने 'भारत-दुर्दशा'-नाटक के प्रारंभ में समस्त देशवासियों को संबोधित करके, देश की गिरी हुई हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहाने को आमंत्रित किया था, उस दिन का ठीक-ठीक अनुसंधान करना अब कठिन है ; पर यदि उसका पता लग सके, तो इस देश के अथवा कम-से-कम हिंदी-साहित्य के इतिहास में वह किसी अन्य महापुरुष के जयंती-दिवस से किसी प्रकार कम महत्त्व-पूर्ण नहीं हो सकता। उस दिन शताब्दियों से सोते हुए साहित्य ने जागने का उपक्रम किया था, उस दिन रूढ़ियों की अनिष्टकर परंपरा के विरुद्ध प्रबल क्रांति की घोषणा हुई थी, उस दिन छिन्न-भिन्न देश को एक सूत्र में बाँधने की शुभ भावना का उदय हुआ था। उस दिन देश और जाति के प्राण एक सत्कवि ने सच्चे जातीय जीवन की झलक दिखाई थी, और उसी दिन संकीर्ण प्रांतीय मनोवृत्तियों का अंत करने के लिए स्वयं सरस्वती ने राष्ट्रभाषा के प्रतिनिधि कवि के कंठ में बैठकर

एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वासित की थी। मुक्तकेशिनी शुभ्रवसना परवशा भारतमाता की करुणोज्ज्वल छवि देश ने और देश के साहित्य ने उसी दिन देखी थी, और उसी दिन सुनी थी टूटी-फूटी शृंगारिक वीणा के बदले एक वज्र गंभीर झनकार, जिसे सुनते ही एक नवीन जीवन के उल्लास में वह नाच उठा था। वह दिवस निश्चय ही परम मंगलमय था; क्योंकि आज भी उसका स्मरण कर हम अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। यदि सच पूछा जाय, तो उसी दिन से एक नवीन चेतना हमारे साहित्य को मिली, और उसी दिन से उसके दिन फिरे। आज हम जिस साहित्यिक प्रगति पर इतने प्रसन्न हैं, उसका बीजारोपण इसी शुभ दिवस को हुआ था। छायावाद को वर्तमान काव्यधारा की मूल स्रोतस्विनी भी तत्कालीन सर्वतोमुखी नवजीवन को पाकर सलिलवती हुई थी।

स्वामी दयानंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि के उद्योग से सामाजिक, सांप्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में जो हलचल मची, उसके परिणाम-स्वरूप सबसे अधिक, महत्त्व-पूर्ण बात हुई जनता में शिक्षा की अभिरुचि। संस्कृत तथा उर्दू-फारसी की ओर प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा स्वामी दयानंद से अधिक मिली, और हिंदी-अँगरेजी की पढ़ाई तो कुछ पहले से ही प्रारंभ हो चुकी थी। पड़ोस में होने के कारण उन्नतिशील बँगला-भाषा की ओर भी कुछ लोगों का ध्यान लगभग उसी समय से खिंचा। इस जोरदार शिक्षा-प्रचार का जो प्रभाव राजनीतिक अभिज्ञता, सामाजिक जागृति, धार्मिक चेतना आदि के रूप में पड़ा, वह तो पड़ा ही, हिंदी-साहित्य-क्षेत्र भी उसके शुभ परिणाम-स्वरूप अनंत उर्वर हो उठा। सारा साहित्य नवीन प्रकाश से परिपूर्ण होकर ज्योति की शत-सहस्र किरणें विकीर्ण करने लगा। हमारी कविता भी सजग हो उठी। वह अपनी स्थविरता का परित्याग कर आगे बढ़ी, और सामाजिक प्रवृत्तियों के अनुकूल रूप-रंग बदल शिक्षित जनता के साहचर्य में आ गई। स्वयं देवी

सरस्वती ने अपने अलौकिक कर-स्पर्श से कविता-कामिनी को सुवर्णमयी बना दिया था। फिर भला भक्ति-गद्‌गद् भाव से घर-घर उसकी आरती क्यों न उतारी जाती, क्यों न उसकी यशःप्रशस्ति अमिट अक्षरों में हमारे हृदय-पटल पर अंकित कर दी जाती !

शिक्षित समाज के समकक्ष पहुँचने में हिंदी-कविता को जो रूप-रंग बदलने पड़े, उसका कुछ विवरण देने की आवश्यकता होगी; क्योंकि यही विवरण प्रचलित छायावाद की कविता के विकास का प्रारंभिक इतिहास है। हिंदी के अनेक समालोचकों ने जान-बूझकर अथवा भ्रम में पड़कर इस संबंध में बहुत-सी भ्रामक बातें कह डाली हैं, जिसके कारण छायावाद की कविता कभी कुछ और कभी कुछ तथा कभी-कभी कुछ की कुछ समझ पड़ती है। एक नवीन आलोचक को 'वर्तमान हिंदी-कविता और छायावाद'-शीर्षक लेख के उस अंश में, जहाँ प्राचीन और नवीन कविता का अंतर दिखाया गया है, मेरे मत से कुछ इसी प्रकार का भ्रम हो गया है। प्राचीन और नवीन में भेद बतलाते हुए उन्होंने यह कहा है कि एक में सौंदर्य और प्रेम की शारीरिकता और दूसरे में उसके आंतरिक रूप के प्रदर्शन का प्रयास है। यह कथन बहुत कुछ सत्य का तिरस्कार करता है, पर यहाँ इसके आक्षेप से प्रयोजन नहीं। परंतु प्राचीन और नवीन के उपर्युक्त भेद के आधार पर जब वे कहते हैं कि इस 'अंतर के कारण ही इन दोनों स्कूलों के कवियों की वर्णन-शैली और प्रणाली में भी भेद है; पुराने ढंग के कवि कथा की भाँति लिखते हैं, वर्णन करते हैं और नए ढंग के कवि आंतरिक उच्छ्वास को स्वयं अनुभव करने की चेष्टा करते हैं'—तब उनका भ्रम मूर्तिमान् प्रत्यक्ष देख पड़ता है। वे वर्णनात्मक कविता को स्थूल प्रेम के प्रकाशन के उपयुक्त तथा आत्माभिव्यक्ति-विषयक कविता को सूक्ष्म प्रेम या 'प्रेम के आंतरिक रूप' की प्रदर्शिका कहकर इन दो श्रेणियों की कवि-परंपरा के साथ जो अन्याय करते हैं, वह तो करते ही हैं,

साथ ही वे इस कथन से कविता के मूल में स्थित मनोवृत्तियों से अपनी अनभिज्ञता भी सिद्ध करते हैं। इतनी अधिक वर्णनात्मक कविताओं में सौंदर्य तथा प्रेम के सूक्ष्म रूप का चित्रण हुआ है, इतनी अधिक आंतरिक उच्छ्वास-संबंधिनी कविता से कलुषित, शरीरजन्य प्रेम के फुहारे फूट निकले हैं, इतने अधिक कवियों ने उपर्युक्त दोनों शैलियों में रचनाएँ की हैं कि न तो उदाहरणों की आवश्यकता रह जाती है, और न और कुछ कहने-सुनने की ही।

सच बात तो यह है कि अँगरेजी के अध्ययन के कारण उनकी 'लिरिक्स' की ओर हमारी प्रवृत्ति अधिक हुई और उन्हीं के अनुकरण से हमारी आधुनिक कविता में आत्माभिव्यंजन की प्रधानता है। यहाँ अनुकरण से हमारा अभिप्राय शैली के अनुकरण से है। इसे स्वीकार करने में असमंजस की कोई बात नहीं। कविता के कला-पक्ष में—शैली आदि में, हिंदी को अन्य भाषाओं का ऋण मान लेना पड़ेगा। संस्कृत की तो कोई बात नहीं, उर्दू और बँगला के कितने ही छंद हिंदी ने उधार लिए हैं। नवीन कविता का 'हृदयवाद' भी संस्कृत के मुक्तकों तथा उर्दू की 'दर्द-भरी' गजलों के ढंग का है। कवित्व कम और 'चोट' अधिक—यह इसकी विशेषता है। इसका यह मतलब नहीं कि इस क्षेत्र में हिंदी की मौलिकता का बिलकुल लोप हो गया। हिंदी-कविता के उस क्रांतियुग में एक बड़ी मौलिकता ब्रजभाषा के परित्याग और खड़ी बोली के ग्रहण के रूप में दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त निरंतर भाषा-संस्कार अनेक नवीन हिंदी-छंदों का निर्माण, मात्रिक छंदों में अतुकांत कविता की रचना आदि इस क्षेत्र की महत्त्व-पूर्ण मौलिक कृतियाँ हैं। "निरालाजी" के स्वच्छंद छंद के रूप में भी हिंदी को एक बहुत बड़ी मौलिक वस्तु मिली है।

कविता के कला-पक्ष के परिवर्तनों का साधारण उल्लेख कर चुकने पर उसके भाव-पक्ष पर विचार करने की बारी आती है; परंतु

छायावाद या रहस्यवाद के संबंध में कुछ ऐसे मत प्रकट किए गए हैं, जिनके कारण यहाँ ठहरकर कुछ विचार करने की आवश्यकता होगी। हिंदी के कुछ विद्वान् रहस्यवाद को एक विशेष काव्य-परंपरा न मानकर केवल भावों के व्यक्त करने की एक शैली-मात्र मानते हैं, और "अन्योक्ति", "समासोक्ति", "ललित" आदि अलंकारों में ही तमाम रहस्यवाद का पर्यवसान कर देते हैं। रहस्यवाद को ध्वनि-काव्य कहकर वे उसकी आध्यात्मिक व्यंजना स्वीकार करते हैं, किंतु एक स्वतंत्र विचारधारा के रूप में वे उसे नहीं ग्रहण करते। "सरस्वती"-पत्रिका की संपादकीय टिप्पणियों में श्री सुमित्रानंदन पंत की कविताओं का विवेचन करते हुए, आज से कुछ महीने पहले एक प्रसिद्ध आलोचक ने उन्हें विस्मयवादी कवि ठहराया था। मुझे स्मरण आता है, इस आलोचना में भी शैली के आधार पर ही ऐसी बात कही गई थी। मैं अपने मत का स्पष्टीकरण कविताओं के उद्धरण देकर करना चाहता हूँ।

१. स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार चकित रहता शिशु-सा नादान;
विश्व के पलकों पर सुकुमार विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न-जाने नक्षत्रों से कौन,
निमंत्रण मुझको देता मौन!
(पंत)

२. चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर,
प्रलय चल रहा अपने पथ पर;
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर,
उससे हारी होड़ लगाई।
(प्रसाद)

३. तुम हो प्रियतम मधुमास, और मैं पिक, कल-कूजन तान,
तुम मदन पंचशर-हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान;

ही अपनी स्थिति देखी। उसने अपने अतीत की तुलना अपनी तत्कालीन अवस्था से की, और दोनों के बीच एक दुर्लंघ्य खाई की कल्पना से वह काँप उठा। जो देश कभी अपनी स्वतंत्रता का उपयोग दीन-दुर्बल राष्ट्रों की रक्षा में करता था, जिसने अपने अस्तित्व की सार्थकता ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल के निरंतर विकास में समझ रक्खी थी, आज वही पराधीन होकर अपनी मुक्ति का मार्ग भी नहीं पा सकता। जिस देश में सर्वप्रथम विश्व मैत्री-जैसे उच्चादर्शों की कल्पना की गई थी, आज वही शत-सहस्र खंडों में विभक्त होकर पारस्परिक वैमनस्य का केंद्र बन रहा है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती थी, जिस देश में नवागता वधू को 'गृहस्वामिनी' की आदरणीय उपाधि मिलती थी, आज वही देश अपनी स्त्रियों का डंडों से सत्कार करना सीख गया है। जिस शस्यश्यामल भूमि में किसी ने कभी अकाल का नाम नहीं सुना था, वहाँ आज किसी को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। जहाँ सुख था, शांति थी, स्नेह और आनंद था, आज वह हाहाकार के सिवा और कुछ भी नहीं! जो कभी ऋषियों की तपोभूमि थी, जहाँ ऋषि-कन्याएँ मृगशावकों के साथ खेलती-कूदती रहती थीं आज वहाँ बड़े-बड़े नगर बस गए हैं, जिनमें विलासिता की पुतलियाँ रहती हैं, और रहते हैं ऐसे मनुष्य जो मनुष्यता के लिए कलंक हैं। जिन ग्रामों में दिन भर के काम से थके हुए मनुष्य संध्या-समय दीपक जलाकर परिवार के साथ किसी धार्मिक पुस्तक के पाठ का आनंद उठाते थे, वे सबके-सब आज उजड़ गए। कोई किसी को सांत्वना देनेवाला नहीं कोई किसी की बात पूछनेवाला नहीं! यह भी कोई देश है, यह भी कोई रहने की जगह है, यह भी कोई जीवन है!

इस युग की कविताओं में करुणा की एक क्षीण आभा सर्वत्र व्याप्त मिलती है, कहीं-कहीं इसी करुणा की शक्ति से मृदुल, रहस्यमयी उक्तियाँ भी कवि-हृदयों से निकल पड़ी हैं। देखिए—

राजनीतिक-चेतना से अनुप्राणित "नवीनजी" की 'विप्लव-गायन'-शीर्षक कविता बहुत प्रसिद्ध है। क्रांतिकारी भावना से भरी मेरे मित्र श्री रामअवध द्विवेदी की लिखी हिंदी की एक उत्कृष्ट कविता और है—

मैं कवि हूँ मेरे जीवन का मूल मंत्र है क्रांति।

× × ×

ज्यों-ज्यों बढ़ती है मेरे अंतरतर की व्याकुल ज्वाला,
त्यों-त्यों पीता हूँ मैं पागल कर देनेवाला प्याला।
हृदय-सिंधु मंथन करता है जब मेरा विषाद का वात,
जब मेरा अस्तित्व काँप उठता है सह निर्दय आघात।
जीवन की रजनी में उठती है जब मेघों की माला,
तिमिर-अंक में जब कि थिरकती है चपला अति विकराला।
उसी समय झंकृत हो उठते हैं मेरे प्राणों के तार,
अग्नि-शिखा को पहनाता हूँ मैं कोमल कुसुमों के हार।
मेरे गायन में दो लय हैं दुहरी गति दो राग,
सतत धधकती हुई आग है, मलय-मृदुल अनुराग।
मैं रवि हूँ, पावक हूँ, शशि हूँ शीतल सुमन सुवास,
अटल शक्ति हूँ, किंतु निहित है मुझमें हास-विलास।

समाज की अनेक कुरीतियों पर जैसी भावुकता-पूर्ण रचनाएँ श्री सियारामशरणजी की "आर्द्रा"-नामक पुस्तक में हैं, हिंदी में वैसी अन्यत्र नहीं हैं। उनकी "अछूत", "अग्नि-परीक्षा" आदि कविताएँ हृदय की कोमल वृत्तियों का जिस तीव्रता से उद्रेक करती हैं, उसका अनुभव सहृदय पाठक करते ही होंगे। गुप्तजी की भाषा भी सरल, सुन्दर विषय के उपयुक्त है।

प्राचीन तपोवनों में विचरण करने की इच्छा रखनेवाले आधुनिक बीभत्स नागरिक जीवन से क्षुब्ध हों, तो आश्चर्य क्या है? यह उन्हीं की पुकार है—

आओ-आओ नगरबहि से तस नागरिक निर्जन में,
यहाँ एक सरिता बहती है जिसकी लोल लहरियों में—
अवगाहन कर शीतल होले जिसका जितना जी चाहे,
रुचिर कूल की रम्य लताएँ रत रहतीं रँगरलियों में।

इसी प्रकार की बहुत-सी कविताएँ सामयिक स्थिति की प्रेरणा से लिखी गईं, जिनका विस्तृत विवरण स्थल संकोच के कारण नहीं दिया जा सकता, केवल दो-एक संकेत ही किए जाते हैं। स्त्री-समाज के चिरकालिक पतन से क्षुब्ध हो, गोस्वामीजी की प्रसिद्ध पंक्ति "ढोल गँवार शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" के प्रतिवाद-स्वरूप, मानो कविवर शेली के कंठ से कंठ मिलाकर पं० सुमित्रानन्दजी पंत नारी जाति को संबोधित करते हुए कहते हैं—

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान ;
तुम्हारी पावनता, अभिमान ,
शक्ति, पूजन-सम्मान ;
अकेली सुंदरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्यों की संधान ।

इसी प्रकार सुप्त समाज की निद्रा-भंग का आयोजन "निरालाजी" किन सुकुमार शब्दों में करते हैं—

जागो फिर एक बार,
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,
अरुण-पंख तरुण किरण खड़ी खोल रही द्वार।

× × ×

देश-काल से प्रेरित और प्रभावित होकर हमारी कविता का प्रवाह किस ओर जा रहा है यह ऊपर संक्षेप में दिखाया गया। परन्तु इन प्रभावों से परे भी साहित्य में कुछ होना चाहिए वह जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। कहने का मतलब यह नहीं कि जो साहित्य देश

और काल के अनुकरण में बनता है वह स्थायी नहीं होता अथवा उसकी गणना निम्न कोटि में होती है। सच्चा कवि तो अपनी प्रतिभा के बल से क्षणिक परिस्थितियों में भी स्थायी साहित्य के योग्य कल्पना करता है। किंतु इससे भिन्न जो दूसरे प्रकार का साहित्य है वह मनुष्य मात्र की भावनाओं से समान सामंजस्य देखने के कारण अखिल मानव समाज की संपत्ति सहज ही हो सकता है।

प्रकृति मनुष्य की चिरंतन सहचरी है। वायु के मृदुल वेग से धीरे-धीरे कलकल छलछल करते हुए बहनेवाले झरने, पहाड़ियाँ और वनराजि, नदी का मंद प्रवाह, रातभर न सोनेवाले तारे, नील नभ, विस्तृत उद्यान, ये सब मनुष्य-मात्र के लिए आकर्षण रखते हैं। इनमें सबकी वृत्तियाँ रमती हैं। इनके अतिरिक्त मानव-समाज के लिए कल्याणकर प्रेम, स्वदेशानुराग, विश्वैक्य आदि की भावनाएँ भी बड़ी स्वाभाविक हैं, कम-से-कम सभ्य मानव-समाज ने उन्हें स्वाभाविक-सा बना लिया है। इस प्रकार की मानव-सुलभ वस्तुओं तथा भावनाओं में कविगण चिरकाल से लीन होते आए हैं, और छायावाद की आधुनिक हिंदी-कविता में भी ऐसी रचनाएँ होने लगी हैं, जिनमें उक्त भावनाओं के प्रतिबिंब देख पड़ते हैं।

इस श्रेणी के तीन प्रधान कवि "प्रसाद", "निराला" तथा "पंत" हैं। इनके अतिरिक्त गोविंदवल्लभ, सियारामशरण, "वियोगी", "नवीन", भगवतीचरण आदि की थोड़ी-सी रचनाएँ ऊपर की पंक्ति तक पहुँचती हैं। स्त्रियों में महादेवी वर्मा की गणना की जा सकती है, ऐसी कविताएँ लिखने का श्रेय पं० माखनलाल चतुर्वेदी को भी दिया गया है।

उपर्युक्त तीन कवियों पर अलग-अलग निबंध लिखने-भर की सामग्री अनायास मिल सकती है, पर यहाँ बहुत

संक्षेप में दो-चार बातें कही जा सकेंगी। "प्रसादजी" भारतीय सभ्यता तथा आर्य-संस्कृति की सच्ची जानकारी रखने के कारण हमारी युग-युग की संचित सामग्री के उत्तराधिकारी थे। इसके साथ उनके सच्चे कवि-हृदय ने मिलकर मणि-कांचन संयोग को प्रत्यक्ष कर दिया है। जीवन की गहन अनुभूतियाँ व्यक्त करने में उनकी कविताएँ समर्थ थीं, साथ ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक भावनाओं पर भी उनकी अंतर्दृष्टि ठहरती है। बाह्य तथा आभ्यंतर प्रकृति का जैसा समीकरण "प्रसादजी" करते हैं, उसे देखकर मन मुग्ध हो जाता है। थोड़ी अवस्था में लिखा हुआ उनका "प्रेमपथिक" विश्वमयी की भावना से ओत-प्रोत है। उनकी प्रारंभिक कृतियों में भी सुन्दर रहस्यमयी उक्तियाँ मनोमोहनी हुई हैं। पश्चात तो उनका काव्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था।

"निरालाजी" हिंदी के श्रेष्ठ दार्शनिक कवि हैं। इस दृष्टि से वे अंगरेज कवि ब्राउनिंग से समता रखते हैं। दर्शन बुद्धिगम्य विषय है, और काव्य में हृदय की वृत्ति काम करती है, इस दृष्टि से दर्शन और काव्य का मेल कम मिलता है, और इसी दृष्टि से कुछ पश्चिमी समालोचकों ने दार्शनिक कविता में कवित्व कम स्वीकार किया है, परंतु अन्य आलोचकों की राय इसके विपरीत है। स्वयं ब्राउनिंग के काव्योत्कर्ष के संबंध में पाश्चात्य समीक्षकों में बड़ा भेद है। यहाँ उस चिंतावाद से मतलब नहीं। यह दार्शनिकों का देश है। यहाँ की विद्या ब्रह्मविद्या है; "रसो वै सः" कहा भी है। इस देश की जलवायु के अनुकूल दार्शनिकता तथा कवित्व को सम्मिश्रित रूप लेकर विकसित होने के कारण "निरालाजी" की अनेक रचनाएँ इस युग की हिंदी रचनाओं में अतुलनीय हुई हैं। उनकी "[illegible]", "यामिनी", "यमुने" आदि कविताएँ ऐसी ही हैं। इनमें [illegible] उज्ज्वल भावराशि, गुम्फित दार्शनिक विचारों के संयोग से [illegible] चमक उठी है, जैसे मृदु-अनिलतरलित जल में सवेरे की

निरन्तर पड़ी हो। पर जहाँ कहीं निराला जी की रचनाओं में दार्शनिकता का ही आधिक्य होने के कारण क्लिष्टता दिखाई पड़ती है, वहाँ सहृदयता से तकरार करनेवालों को ये रचनाएँ बिलकुल अच्छी नहीं लगतीं।

"निरालाजी" की दूसरी बड़ी विशेषता उनकी कविताओं में प्रकाशन तथा निर्वाह का गुण है। स्वयं समालोचक होने के कारण काव्य के विश्लेषण करने की उनमें बड़ी शक्ति है। अपनी इस शक्ति का उपयोग वे अपनी रचनाओं में बड़ी सफलतापूर्वक करते हैं।

"पंतजी" मधुर वाणी के बड़े ही कोमल तथा सरस-हृदय कवि हैं। उनके गायन का मुख्य विषय प्रेम है। उनकी कविता की मूल रागिनी है सौंदर्य की विवृत्ति। "ग्रंथि", "उच्छ्वास", "आँसू", "अनंग" आदि उनकी अनेक रचनाओं में प्रेम की ही विशुद्ध धारा बहती है। "पंतजी" की कई रचनाओं में कवित्व पराकाष्ठा तक पहुँचा मिलता है। उनकी कल्पना-शक्ति तथा विषय के अनुरूप मूर्तिमत्ता की क्षमता आधुनिक हिंदी कवियों में अद्वितीय तथा अधिकतर अनियम शैली के कोटि की पाई जाती है। परंतु कुछ छोड़कर 'पंतजी' की रचनाओं में कल्पना की उड़ानों का हलकापन है— जीवन की गम्भीरता उतनी नहीं। उन रचनाओं में "पंतजी" मधुर कल्पनाओं के कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे युवक-समाज के मन प्रिय कवि हैं।

परन्तु 'पंतजी' की "परिवर्तन"-शीर्षक कविता में गम्भीरता-समन्वित उनकी रचना में मानो पंतजी का पुरुषत्व जाग उठा हो, मानों उनकी कोमलता जीवन के कठोर प्रहारों के सामने क्षण-मात्र टिक न सकी हो। रवींद्रनाथ ठाकुर विगत महायुद्ध के बाद जब योरप गए, उन्होंने एक विशाल भूखण्ड को उजड़ा हुआ नग्न, क्षुब्ध पाया। उस समय सुना जाता है, उन्होंने युद्ध की कल्पना एक विशाल राक्षस के रूप में की, जिसने सर्वसंहारक बनकर, प्रदेश-का-प्रदेश

चाटकर स्वाद्य कर दिया था। पंतजी ने भी "परिवर्तन" में ऐसी ही अनेक कल्पना-मूर्तियाँ खड़ी की हैं, जो उनकी उच्च प्रतिभा की परिचायक हैं। पंतजी की यह रचना हिंदी-कविता का शृंगार है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। इस रचना में कवि का दृष्टिकोण यद्यपि निराशावादी है किंतु उसकी आस्था साधना पर स्थिर और सुदृढ़ है।

यह हिंदी छायावाद कविता की त्रिमूर्ति है। इनकी गणना वृहत्त्रयी में की गई—रचना-सौष्ठव के विचार से और विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक कृतियाँ उपस्थित करने के विचार से। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विभूतियाँ भी हैं, जिनका नाम ऊपर लिया जा चुका है। पं० गोविंदवल्लभ पंत की "हे अनजान विदेशी आज"-शीर्षक कविता चित्त में अनोखा चमत्कार छोड़ जाती है। पंतजी, मालूम होता है, प्रकृति की रम्य गोद में पले हैं, और उनका जीवन उससे घुल-मिलकर एक हो गया है। सियारामशरणजी की 'हूक' कविता बड़ी करुण और मर्मस्पर्शिनी है। वियोगीजी के "कठोर-कर्तव्य"-शीर्षक संवाद में मनोवृत्तियों का मार्मिक चित्रण है, नवीनजी की 'रक्षा-बंधन" कविता मुझे बड़ी अच्छी लगी। भगवतीचरणजी की कविताएँ मुझे पहले से अपनी ओर खींच चुकी थीं इधर "नूरजहाँ की कब्र पर" लिखी गई दुःखगाथा हिंदी में एक ही निकली। ये सब कवि हिंदी की भविष्याशाएँ हैं, इनकी उपर्युक्त रचनाएँ इस आशा का आधार !

—प्रो० नंददुलारे वाजपेयी

(माधुरी, अगस्त, १६२६)

हिंदी कविता की नई धारा

भक्ति-काल और रीति-काल की चली आती हुई परंपरा के अंत में भारतेंदुमंडल के प्रभाव से देश-प्रेम और जाति-गौरव की भावना को लेकर एक नूतन परंपरा की प्रतिष्ठा हुई संवत् १६५० से १६७५ तक काव्य की नूतन परंपरा का अनेक विषयस्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ, पर द्विवेदीजी के प्रभाव से एक ओर उसमें भाषा की सफाई आई, दूसरी ओर उसका स्वरूप गद्यवत् रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर बाह्यार्थनिरूपक हो गया। अतः संवत् १६७५ से हिंदी कविता में जो परिवर्तन हुआ और पीछे 'छायावाद' कहलाया वह पूर्ववर्ती अर्थात् संवत् १६५० से १६७५ तक की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्य-शैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। अर्थ-भूमि या वस्तु-भूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।

संवत् १६५० से १६७५ तक की कविता में काव्य का स्वरूप खड़ा करनेवाली दोनों बातों की कमी दिखाई पड़ती थी—कल्पना का रंग भी बहुत कम या फीका रहता था और हृदय का वेग भी खूब खुलकर नहीं व्यंजित होता था। इन बातों की कमी परंपरागत व्रजभाषा-काव्य का आनंद लेनेवालों को भी मालूम होती थी और बँगला या अँगरेजी की कविता का परिचय रखनेवालों को भी। अतः खड़ी

मेरे उर का छिपा खजाना, अहंकार का भाव पुराना,
बना आज तू मुझे दिवाना,
तप्त श्वेत बूँदों में ढर जा। (सन् १९१७)

(ग) जब संध्या को हट जावेगी भीड़ महान्
तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान।
शून्य कक्ष के अथवा कोने में ही एक
बैठ तुम्हारा करूँ वहाँ नीरव अभिषेक। (१९२०)

पं० बदरीनाथ भट्ट भी सन् १९१३ के पहले ही भाव-व्यंजक और अनूठे गीत रचते आ रहे थे। दो पंक्तियाँ देखिए—

दे रहा दीपक जलकर फूल,
रोपी उज्ज्वल प्रभा-पताका अंधकार हिय हूल।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के भी इस ढंग के कुछ गीत सन् १९१५-१६ के आस-पास मिलेंगे।

ये कवि जगत् और जीवन के विस्तृत क्षेत्र के बीच नई कविता का संचार चाहते थे। ये प्रकृति के साधारण, असाधारण सब रूपों पर प्रेम-दृष्टि डालकर, उसके रहस्य-भरे सच्चे संकेतों को परखकर, भाषा को अधिक चित्रमय, सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता का एक अकृत्रिम, स्वच्छंद मार्ग निकाल रहे थे। भक्तिक्षेत्र में उपास्य की एकदेशीय या धर्मविशेष में प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर सार्वभौम भावना की ओर बढ़ रहे थे जिसमें सुंदर रहस्यात्मक संकेत भी रहते थे। अतः हिंदी-कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्हीं को—विशेषतः श्री मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय को—समझना चाहिए। इस दृष्टि से छायावाद का रूप-रंग खड़ा करनेवाले कवियों के संबंध में अँगरेजी या बँगला की समीक्षाओं से उठाई हुई इस प्रकार की पदावली का कोई अर्थ नहीं कि 'इन कवियों के मन में एक आँधी चल रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे; एक नूतन वेदना की छटपटाहट थी जिसमें सुख की मीठी अनुभूति भी लुकी

हुई थी; रूढ़ियों के भार से दबी हुई युग की आत्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए हाथ पैर मार रही थी।' न कोई आँधी थी, न तूफान; न कोई नई ललक थी, न वेदना; न उस युग की नाना परिस्थितियों का हृदय पर कोई नया आघात था, न उसका आहत नाद। इन बातों का कुछ अर्थ तब हो सकता था जब काव्य का प्रवाह ऐसी भूमियों की ओर मुड़ता जिन पर ध्यान न दिया गया रहा होता। छायावाद के पहले नए-नए मार्मिक विषयों की ओर हिंदी कविता प्रवृत्त होती आ रही थी। कसर थी तो आवश्यक और व्यंजक शैली की, कल्पना और संवेदना के अधिक योग की। तात्पर्य यह कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था जो धीरे-धीरे अपने स्वतंत्र ढर्रे पर भी मैथिलीशरण गुप्त मुकुटधर पांडेय आदि के द्वारा हो रहा था।

गुप्तजी और मुकुटधर पांडेय आदि के द्वारा यह स्वच्छंद नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थीं। पुराने ईसाई संतों के छायाभास तथा योरपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगीं। यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिंदी के नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इसका दूसरे साहित्य-क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का इस पर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इसके भीतर अँगरेजी और बँगला की पदावली का जगह-जगह ज्यों का त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बातें [illegible] उद्भावना नहीं सूचित करतीं।

'छायावाद' नाम चल पड़ने का परिणाम यह [illegible] कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य [illegible]

की विशृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मान कर चले। शैली की इन विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना में ही लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही — विभाव-पक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया। इस प्रकार प्रसरणोन्मुख काव्य-क्षेत्र बहुत कुछ संकुचित हो गया। असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति अत्यंत चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारों तक ही काव्य की गति-विधि प्रायः बँध गई। हृत्तंत्री झंकार, नीरव संदेश, अभिसार, अनंत-प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, आँखमिचौनी, मद में झूमना, विभोर होना इत्यादि के साथ साथ शराब प्याला, साकी आदि सूफी कवियों के पुराने सामान भी इकट्ठे किए गए। कुछ हेर-फेर के साथ वही बँधी पदावली, वेदना का वही प्रकांड प्रदर्शन, कुछ विशृंखलता के साथ प्रायः सब कविताओं में मिलने लगा।

अज्ञेय और अव्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर काम-वासना के शब्दों में प्रेम-व्यंजना भारतीय काव्य-धारा में कभी नहीं चली, यह स्पष्ट बात "हमारे यहाँ यह भी था, वह भी था" की प्रवृत्तिवालों को अच्छी नहीं लगती। इससे खिन्न होकर वे उपनिषद से लेकर तंत्र और योग-मार्ग तक की दौड़ लगाते हैं। उपनिषदों में आए हुए आत्मा के पूर्ण आनन्दस्वरूप के निर्देश, ब्रह्मानंद की अपरिमेयता को समझाने के लिए स्त्री-पुरुष-सम्बन्धवाले दृष्टांत या उपमाएँ, योग के सहस्रदल कमल आदि की भावना के बीच वे बड़े संतोष के साथ उद्धृत करते हैं। यह सब करने के पहले उन्हें समझना चाहिए कि जो बात ऊपर कही गई है उसका तात्पर्य क्या है। यह कौन कहता है कि मत-मतांतरों की साधना के क्षेत्र में रहस्य-मार्ग नहीं चले? योग रहस्य-मार्ग है, तंत्र रहस्य-मार्ग है, रसायन भी रहस्य-मार्ग है। पर ये सब साधनात्मक हैं; प्रकृत भाव-भूमि या काव्य-भूमि के भीतर चले हुए मार्ग नहीं। भारतीय

परम्परा का कोई कवि मणिपूर, अनाहत आदि चक्रों को लेकर तरह तरह के रंगमहल बनाने में प्रवृत्त नहीं हुआ।

संहिताओं में तो अनेक प्रकार की बातों का संग्रह है। उपनिषदों में ब्रह्म और जगत्, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में कई प्रकार के मत हैं। वे काव्य-ग्रंथ नहीं हैं। इनमें इधर-उधर काव्य का जो स्वरूप मिलता है वह ऐतिह्य, कर्मकांड, दार्शनिक चिंतन, साम्प्रदायिक गुह्य साधना, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना इत्यादि बहुत-सी बातों में उलझा हुआ है। विशुद्ध काव्य का निखरा हुआ स्वरूप पीछे अलग हुआ। रामायण का आदिकाव्य कहलाना साफ यही सूचित करता है। संहिताओं और उपनिषदों को कभी किसी ने काव्य नहीं कहा। अब सीधा सवाल यह रह गया कि क्या वाल्मीकि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक कोई एक भी ऐसा कवि है जिसने अज्ञेय और अव्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर प्रियतम बनाया हो और उसके प्रति कामुकता के शब्दों में प्रेम व्यंजना की हो। कबीरदास जिस प्रकार हमारे यहाँ के ज्ञानवाद और सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद को लेकर चले, उसी भावात्मक रहस्य-परम्परा का यह नूतन भाव-भंगी और लाक्षणिकता के साथ आविर्भाव है। बहुत रमणीय है, कुछ लोगों को अत्यंत रुचिकर है यह और बात है।

प्रणय-वासना का यह उद्गार आध्यात्मिक पर्दे में ही छिपा न रह सका। हृदय की सारी काम-वासनाएँ, इन्द्रियों के सुख-विलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच, एक बँधी हुई रूढ़ि पर व्यक्त होने लगा। इस प्रकार रहस्यवाद से सम्बन्ध न रखनेवाली कविताएँ भी छायावाद ही कही जाने लगीं। अतः 'छायावाद' शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य-शैली के सम्बन्ध में भी प्रतीकवाद के अर्थ में होने लगा।

छायावाद की इस धारा के आने के साथ ही साथ अनेक लेखक नवयुग के प्रतिनिधि बनकर योरप के साहित्य-क्षेत्र में प्रवर्तित काव्य

और कला-सम्बन्धी अनेक नए-पुराने सिद्धांत सामने लाने लगे। कुछ दिन 'कलावाद' की धूम रही और कहा जाता रहा "कला का उद्देश्य कला ही है।" इस जीवन के साथ काव्य का कोई सम्बन्ध नहीं; उसकी दुनिया ही और है। किसी काव्य के मूल्य का निर्धारण जीवन की किसी वस्तु के मूल्य के रूप में नहीं हो सकता। काव्य तो एक लोकातीत वस्तु है। कवि एक प्रकार का रहस्यदर्शी या पैगम्बर है। इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को लेकर बताया गया कि "काव्य में वस्तु या वर्ण्य विषय कुछ नहीं; जो कुछ है वह अभिव्यंजना के ढंग का अनूठापन है।" इन दोनों वादों के अनुसार काव्य का लक्ष्य उसी प्रकार सौंदर्य की सृष्टि या योजना कहा गया है जिस प्रकार बेल-बूटे या नक्काशी का। कवि-कल्पना प्रत्यक्ष जगत् से अलग एक रमणीय स्वप्न घोषित किया जाने लगा और कवि सौंदर्य-भावना के मद में झूमनेवाला एक लोकातीत जीव। कला और काव्य की प्रेरणा का सम्बन्ध स्वप्न और कामवासना से बतानेवाला मत भी इधर-उधर उद्धृत हुआ। सारांश यह कि इस प्रकार के अनेक वाद-प्रवाद पत्र-पत्रिकाओं में निकलते रहे।

छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओं को बहुत-कुछ गति-विधि अँगरेजी वाक्य-खंडों के अनुवाद द्वारा संघटित देख अँगरेजी काव्यों से परिचित हिंदी-कवि सीधे अँगरेजी से ही तरह तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगह जगह अपनी रचनाओं में जड़ने लगे। 'कनक प्रभात', 'विचारों में बच्चों की साँस' 'स्वर्ण समय,' 'प्रथम मधुमास,' 'तारिकाओं की तान' स्वप्निल कांति' ऐसे प्रयोग अजायबघर के जानवरों की तरह उनकी रचनाओं के भीतर इधर-उधर मिलने लगे। निराला जी की शैली कुछ अलग रही। उसमें लाक्षणिक वैचित्र्य का उतना आग्रह नहीं पाया जाता, जितना पदावली की तड़क-भड़क और पूरे वाक्य

के वैलक्षण्य का। केवल भाषा के प्रयोग-वैचित्र्य तक ही बात न रही। ऊपर जिन अनेक योरपीय वादों और प्रवादों का उल्लेख हुआ है उन सबका प्रभाव भी छायावाद कही जानेवाली कविताओं के स्वरूप पर कुछ न कुछ पड़ता रहा।

कलावाद और अभिव्यंजनावाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी अप्रस्तुत योजना के काम में लाए गए। सीधे उनके मर्म की ओर हृदय प्रवृत्त न दिखाई पड़ा। पंतजी अलबत्त प्रकृति के कमनीय रूपों की ओर कुछ रुककर हृदय रमाते पाए गए।

दूसरा प्रभाव यह देखने में आया कि अभिव्यंजना-प्रणाली या शैली की विचित्रता ही सब कुछ समझी गई। नाना अर्थ-भूमियों पर काव्य का प्रसार रुक-सा गया। प्रेम-क्षेत्र—कहीं आध्यात्मिक, कहीं लौकिक—के भीतर ही कल्पना की चित्र-विधायिनी क्रीड़ा के साथ प्रकांड वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा व्रीड़ा से दौड़ी हुई प्रिय के कपोलों पर की ललाई, हाव-भाव, मधुस्राव तथा अश्रु प्रवाह इत्यादि के रँगीले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्ण तृप्त दिखाई देते हैं। जगत् और जीवन के नाना मार्मिक पक्षों की ओर उनकी दृष्टि नहीं है। बहुत से नए रसिक प्रत्येक गंध-युक्त, चिपचिपाती और भिनभिनाती भाषा को ही सब कुछ समझने लगे हैं। लक्षणाशक्ति के सहारे अभिव्यंजना-प्रणाली या काव्य-शैली का अवश्य बहुत अच्छा विकास हुआ; पर अभी तक कुछ बँधे हुए शब्दों की रूढ़ि चली चल रही है। रीति-काल की शृंगारी कविता की भरमार की तो इतनी निंदा की गई पर वही शृंगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान—

छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। भाषा के परिमार्जनकाल में किस प्रकार खड़ी बोली की कविता के रूखे-सूखे रूप से ऊबकर कुछ कवि उसमें सरसता लाने के चिह्न दिखा रहे थे यह कहा जा चुका है। अतः आध्यात्मिक रहस्यवाद का नूतन रूप हिंदी में न आता तो भी शैली और अभिव्यंजना-पद्धति की उक्त विशेषताएँ क्रमशः स्फुटित होतीं और उनका स्वतंत्र विकास होता। हमारी काव्य-भाषा में लाक्षणिकता का कैसा अनूठा आभास घनानंद की रचनाओं में मिलता है, यह पाठक जानते ही होंगे।

छायावाद जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है वहाँ तक तो रहस्यवाद के ही अंतर्गत रहा है। उसके आगे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद नाम की काव्य-शैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेम-गान ही करता रहा है। हर्ष की बात है कि अब कोई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और और मार्मिक पक्षों की ओर भी बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इसी के साथ ही काव्य-शैली में प्रतिक्रिया के प्रदर्शन या नएपन की नुमायश का शौक भी घट रहा है। अब अपनी शाखा की विशिष्टता को विभिन्नता की हद पर ले जाकर दिखाने की प्रवृत्ति का वेग क्रमशः कम तथा रचनाओं को सुव्यवस्थित और अर्थगर्भित रूप देने की रुचि क्रमशः अधिक होती दिखाई पड़ती है।

स्व० जयशंकरप्रसाद जी अधिकतर तो विरह-वेदना के नाना सजीले शब्द-पथ निकालते तथा लौकिक और अलौकिक प्रणय का मधु गान ही करते रहे, पर 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थभूमि पर ले

छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। भाषा के परिमार्जनकाल में किस प्रकार खड़ी बोली की कविता के रूखे-सूखे रूप से ऊबकर कुछ कवि उसमें सरसता लाने के चिह्न दिखा रहे थे यह कहा जा चुका है। अतः आध्यात्मिक रहस्यवाद का नूतन रूप हिंदी में न आता तो भी शैली और अभिव्यंजना-पद्धति की उक्त विशेषताएँ क्रमशः स्फुटित होतीं और उनका स्वतंत्र विकास होता। हमारी काव्य-भाषा में लाक्षणिकता का कैसा अनूठा आभास घनानंद की रचनाओं में मिलता है, यह पाठक जानते ही होंगे।

छायावाद जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है वहाँ तक तो रहस्यवाद के ही अन्तर्गत रहा है। उसके आगे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद नाम की काव्य-शैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेम-गान ही करता रहा है। हर्ष की बात है कि अब कोई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और और मार्मिक पक्षों की ओर भी बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इसी के साथ ही काव्य-शैली में प्रतिक्रिया के प्रदर्शन या नएपन की नुमायश का शौक भी घट रहा है। अब अपनी शाखा की विशिष्टता को विभिन्नता की हद पर ले जाकर दिखाने की प्रवृत्ति का वेग क्रमशः कम तथा रचनाओं को सुव्यवस्थित और अर्थगर्भित रूप देने की रुचि क्रमशः अधिक होती दिखाई पड़ती है।

स्व० जयशंकरप्रसाद जी अधिकतर तो विरह-वेदना के नाना सजीले शब्द-पथ निकालते तथा लौकिक और अलौकिक प्रणय का मधु गान ही करते रहे, पर 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थभूमि पर ले

लाने का प्रयास भी उन्होंने किया और जगत् के वर्तमान दुःख-द्वेषपूर्ण मानव जीवन का अनुभव करके इस 'अंधी जगत् के वृंदावन बन जाने' की आशा भी प्रकट की तथा 'जीवन के अभाव' को भी दगाया। इसी प्रकार श्री सुमित्रानंदन पंत ने 'गुंजन' में सौंदर्य-चयन से आगे बढ़ जीवन के नित्य स्वरूप पर भी दृष्टि डाली है; सुख-दुःख दोनों के साथ अपने हृदय का सामंजस्य किया है और 'जीवन की गति में भी लय' का अनुभव किया है। बहुत अच्छा होता यदि पंतजी उसी प्रकार जीवन की अनेक परिस्थितियों को नित्य रूप में लेकर अपनी सुन्दर, चित्रमयी प्रतिभा को अग्रसर करते जिस प्रकार उन्होंने 'गुंजन' और 'युगांत' में किया है। 'युग-वाणी' में उनकी वाणी बहुत-कुछ वर्तमान आंदोलनों की प्रतिध्वनि के रूप में परिणत होती दिखाई देती है।

निराला जी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा। उन्होंने जिस प्रकार 'तुम' और 'मैं' में उस रहस्यमय 'नाद वेद आकार सार' का गान किया, 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में उन्मद प्रणय-चेष्टाओं के पुष्ट-चित्र खड़े किए उसी प्रकार 'जागरण-वीणा' बजाई; इस जगत् के बीच विधवा की विधुर और करुण मूर्ति खड़ी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक पत्थर तोड़ती दीन स्त्री के माथे पर के श्रम-सीकर दिखाए। सारांश यह कि अब शैली के वैलक्षण्य-द्वारा प्रतिक्रिया-प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थभूमि के रमणीय प्रसार के चिह्न भी छायावादी कहे जानेवाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।

इधर हमारे साहित्य-क्षेत्र की प्रवृत्तियों का परिचालन बहुत-कुछ पश्चिम से होता है। कला में 'व्यक्तित्व' की चर्चा खूब फैलने न कुछ कवि लोक के साथ अपना मेल न मिलने की अनुभूति की बड़ी लम्बी-चौड़ी व्यंजना, कुछ मार्मिकता और फक्कड़पन के साथ, करने लगे हैं। भाव-क्षेत्र में असामंजस्य की इस अनुभूति का भी एक

स्थान अवश्य है, पर वह कोई व्यापक या स्थायी मनोवृत्ति नहीं। हमारा भारतीय काव्य उस भूमि की ओर प्रवृत्त रहा है जहाँ जाकर प्रायः सब हृदयों का मेल हो जाता है। वह सामंजस्य को लेकर—अनेकता में एकता को लेकर—चलता रहा है, असामंजस्य को लेकर नहीं।

स्व० रामचंद्रजी शुक्ल

रहस्यवाद की विवेचना

रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसार चक्र का प्रवर्त्तन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता है। इस बात का अनुभव मनुष्य आदि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी। परंतु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती जिस प्रकार जगत के अन्य दृश्य रूप; और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचार-धारा के द्वारा हो सकता है जिस प्रकार इन दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इस क्षेत्र में सिद्ध हो गए हैं उन्होंने जब-जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब तब अपनी उक्तियों को स्पष्टता देने में अपने आपको असमर्थ पाया है। कबीर ने यह स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूँगे का सा गुड़ है—

अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाइ।

यही रहस्यवाद का मूल है। वेद और उपनिषदों में रहस्यवाद की झलक विद्यमान है। गीता में भगवान के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है, वह भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है।

परमात्मा को पिता, माता, प्रिया, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है; क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनको अवतार मानने के मूल में भी रहस्यवाद ही है। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है।

परमात्मा के पितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल के वेदों ही में मिलने लगती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में 'यो नः पिता जनिता यो विधाता' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है। वेदों में परमात्मा को माता भी कहा गया है—'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ' परमात्मा के मातृ-पितृत्व से प्राणियों के भ्रातृत्व की भावना का उदय होता है—'अज्येष्ठासो अकनिष्ठासो एते सं भ्रातरो'। बहुत पीछे के ईसाई ईश्वरवाद में परमात्मा के पितृत्व और भ्रातृत्व की यही भावना पाई जाती है; अतएव पश्चिमी रहस्यवाद में भी इस भावना का प्राबल्य है। कबीर में भी यह भावना मिलती है—

बाप राम राया अब हूँ सरण तिहारी।

इन्होंने परमात्मा को 'माँ' भी कहा है—

हरि जननी मैं बालिक तेरा।

परन्तु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवादमूलक होने में है जो भारतीयों की ब्रह्मजिज्ञासा का फल है। उपनिषदों और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर भक्त भी होना चाहता है तब तो अवश्य ही वह इस रहस्यवाद की ओर झुकता है। मिलन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता

के क्षेत्र में आकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सर्वात्मवादी कवि के रहस्योद्भावी मानस में संसार उसी रूप में प्रतिबिंबित नहीं होता जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है। वह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखंड संबंध देखता है जिसको चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने जगत् के सब रूपों को दिखलाया है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नहीं हैं. उसी के भिन्न-भिन्न व्यक्त रूप हैं। स्वातंत्र्य के अवतार, सौंदर्य का आध्यात्मिक मूल समझनेवाले अँगरेजी के कवि शेली को भी सर्वात्मवाद। रहस्यवाद ही मर्मर करते हुए काननों में, झरनों में, इन पुष्पों के पराग-गंध में जो उस दिव्य-चुम्बन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ बरते से हुए पवन को उसका परिचय दे रहे हैं इसी प्रकार मंद या तीव्र समीर में. प्रत्येक आते-जाते मेघ खंड की झड़ी में, बसंत-कालीन विहंगमों के कलकूजन में और सब ध्वनियों और स्तब्धता में भी अपनी प्रियतमा की मधुर वाणी सुनाई दे। कबीर में ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओं के होते हुए भी प्रधानता इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेम ख्यानक परम्परा के जायसी एक जगमगाते रत्न हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं जिनमें सूफियों के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवाद-मूलक रहस्यवाद में 'माधुर्य भाव' का उदय हुआ, जो कबीर और प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्री रूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्री रूप में देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है,

मन प्रतीत न प्रेम रस ना इस तन में ढंग ।
क्या जाणूँ उस पीव सूँ कैसे रहसी रंग ॥

इसमें साक्षात्कार की महत्ता का आभास है जो एक साधारण घटना नहीं है ।

ज्यों ज्यों जीवात्मा को अपनी परमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यों त्यों उसका भय जाता रहता है लौकिक भाषा में इसी की ओर इस पद में इशारा है—

अब तोहि जान न देहूँ राम पियारे । ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे ।

यह प्रेम की ढिठाई है ।

परमात्मा से मिलने के लिए ऐसी 'ऊँची गैल, राह रपटीली' नहीं तै करनी पड़ती जहाँ 'पाँव नहीं ठहराय' । वह तो घर बैठे मिल जायेंगे, पर उसके लिए पहुँची हुई लगन चाहिए, क्योंकि परमात्मा तो हृदय ही में है—

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये भाग बड़े घरि बैठे ।

कबीरदास के नाम से लोगों की जिह्वा पर जो यह पद—

मो को कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में ।
न मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ॥

बहुत दिनों से चढ़ा चला आ रहा है, उसका भी यही भाव है । जायसी ने यही भाव यों प्रकट किया है--

पिउ हिरदय महँ भेंट न होई, को रे मिलाव, कहौं केहि रोई ॥

रहस्यमय उक्तियों की रहस्यात्मकता उनके लोकनियोजित शब्दार्थ में नहीं है । उस अर्थ को मानने से उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है; उनका संकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए । मूर्ति को परमात्मा मानकर उसका पूजन इसी लिए करना चाहिए कि ईश्वर-प्राप्ति में आगे की सीढ़ी सहज में चढ़ सकें, क्योंकि साधारणतः सब लोग परमात्मा या ब्रह्म का ठीक ठीक स्वरूप समझने में नितांत असमर्थ होते हैं । अतः मूर्तिपूजा के द्वारा मानों मनुष्य को ब्रह्म के भी साक्षात्कार की

आरंभिक शिक्षा मिलती है। इससे आगे बढ़कर सगुण ईश्वर को परमात्मा मानने में फिर कोई रहस्य नहीं आता। ईसाइयों ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उसी समय इतिश्री कर दी जब ईसा को लौकिक अर्थ में परमात्मा का पुत्र मान लिया। राम और कृष्ण को साक्षात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और सूर में अवतारवाद की मूलीभूत रहस्यभावना नहीं आ पाई है। सखी संप्रदाय ने मनुष्यों को सचमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियों जैसे रखकर और यहाँ तक कि उनसे ऋतुमती स्त्रियों का अभिनय कराकर 'माधुर्य भाव' रहस्यवाद को वास्तववाद का रूप दे दिया। रहस्यवाद के वास्तववाद से पतित हो जाने के कारण ही सदुद्देश्य से प्रवर्तित अनेक धर्म-संप्रदायों में इंद्रिय-लोलुपता का नारकी नृत्य देखने में आता है। रहस्यवादी कवियों का वास्तववादियों से इसी बात में भेद है कि वास्तववादी कवि अपने विषय का यथातथ्य वर्णन करते हैं, और रहस्यवादी केवल संकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्ण्य विषय का आभास भर दे देते हैं। उनमें जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है। इसके लिए वे व्यंजनावृत्ति से अधिकतर काम लिया करते हैं और चित्राधान उनका प्रधान उपादान होता है। उनकी बातें अन्योक्ति के रूप में हुआ करती हैं। किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं। इसी से रहस्यवादी कवियों में वास्तववादियों की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है।

रहस्यवाद : उसकी व्याख्या

रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है, और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनंत वैभव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का अनत तेज अंतर्हित हो जाता है। और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती रहती है। यही दिव्य संयोग है! आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन।

इस सयोग में एक प्रकार का उन्माद होता है, नशा रहता है। उस एकांत सत्य से, उस दिव्य शक्ति से जीव का ऐसा प्रेम हो जाता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता में अंतर्हित कर देता है। उस प्रेम में चचलता नहीं रहती, अस्थिरता नहीं रहती। वह प्रेम अमर होता है।

ऐसे प्रेम में जीव की सारी इंद्रियों का एकीकरण हो जाता है। सारी इंद्रियों से एक स्वर निकलता है और उनमें अपने प्रेम की वस्तु के पाने की लालसा समान रूप से होने लगती है। इंद्रियाँ अपने आराध्य के प्रेम को पाने के लिए उत्सुक हो जाती हैं और उनकी उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि वे उसके विधिगुणों का ग्रहण समान रूप से करती हैं। अंत में वह सीमा इस स्थिति को पहुँचती है

कि भावोन्माद में वस्तुओं के विविध गुण एक ही इन्द्रिय पाने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। ऐसी दशा में शायद इन्द्रियाँ भी अपना कार्य बदल देती हैं। एक बार प्रोफेसर जेम्स ने यही समस्या आदर्शवादियों के सामने सुलझाने के लिए रक्खी थी कि यदि इन्द्रियाँ अपनी अपनी कार्य-शक्ति एक दूसरे से बदल लें तो संसार में क्या परिवर्तन हो जायँगे ? उदाहरणार्थ, यदि हम रंगों को सुनने लगें और ध्वनियों को देखने लगें तो हमारे जीवन क्या अंतर आ जायगा ! इसी विचार के सहारे हम सेन्ट मार्टिन की रहस्यवाद से सम्बन्ध रखनेवाली परिस्थिति समझ सकते हैं जब उन्होंने कहा था ! मैंने उन फूलों को सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जाज्वल्यमान थीं।

अन्य रहस्यवादियों का भी कथन है कि उस दिव्य अनुभूति में इन्द्रियाँ अपना काम करना भूल जाती हैं। वे निस्तब्ध-सी होकर अपने कार्य व्यापार ही को नहीं समझ सकतीं। ऐसी स्थिति में आश्चर्य ही क्या कि इन्द्रियाँ अपना कार्य अव्यवस्थित रूप से करने लगें। इसी बात से हम उस दिव्य अनुभूति के आनंद का परिचय पा सकते हैं जिसमें हमारी सारी इन्द्रियाँ मिलकर एक हो जाती हैं अपना कार्य-व्यापार भूल जाती हैं। जब हम उस अनुभूति का विश्लेषण करने बैठते हैं तो उसमें हमें न जाने कितने गूढ़ रहस्यों और आश्चर्यमय व्यापारों का पता लगता है।

रहस्यवाद के उन्माद में जीव इंद्रिय-जगत से बहुत ऊपर उठ कर विचार-शक्ति और भावनाओं का एकीकरण कर अनंत और अंतिम प्रेम के आधार से मिल जाना चाहता है। यही उसकी साधना है, यही उसका उद्देश्य है। उसमें जीव अपनी सत्ता को खो देता है। मैं, मेरा, सदैव के लिए अंतर्हित हो जाते हैं। वहाँ जीव अपना आधिपत्य नहीं रख सकता। एक सेवक की भाँति अपने को स्वामी के चरणों में भुला देना चाहता है। संसार के इन बाह्य बंधनों का

का निश्चय कर आत्मा ऊपर उठती है। हृदय की भावना साकार बन कर ऊपर की ओर जाती है केवल इसलिए कि वह अनन्त सत्ता एक असीम शांति से आविष्ट होता है। हृदय की इस शांति में कोई स्वार्थ नहीं, संसार की कोई वासना नहीं, कोई सिद्धि नहीं, किसी ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं, केवल हृदय के प्रेम की पूर्ति है। और ऐसा हृदय वह चीज है जिसमें केवल भावनाओं का केंद्र ही नहीं वरन् जीवन की वह अंतरंग अभिव्यक्ति है जिसके सहारे संसार के समस्त पदार्थों में उसकी सत्ता निर्धारित होती है। अनन्त सत्ता के सामने जीव अपने को इतने समीप ला देता है कि उसका साधारण से साधारण भावना में उस अनन्त शक्ति की अनुभूति होने लगती है। अंग्रेजी के एक कवि कोलरिज ने इसी भावना को इस प्रकार प्रकट किया है:—

"हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ नहीं हैं
क्योंकि तू सब कुछ है और सब कुछ तुझ में है।
हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ हैं,
वह भी तुझसे प्राप्त हुआ है
हम जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं
परन्तु तू हमें अस्तित्व प्राप्त करने में सहायक होगा
तेरे पवित्र नाम की जय हो!

कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियाँ इस विचार को कितने सरल और स्पष्ट रूप से सामने रखती हैं:—

लोका जानि न भूलौ भाई
खालिक खलक, खलक में खालिक
सब घट रह्यो समाई।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रहस्यवाद अपने नग्न स्वरूप में एक अलौकिक विज्ञान है जिसमें अनन्त सम्बन्ध की भावना का प्रादुर्भाव होता है और रहस्यवादी वह व्यक्ति है जो इस

शारीरिक अवरोधों की परवाह नहीं है।

वह ईश्वर के समीप पहुँचता है और दिव्य विभूतियों को देखकर चकित हो जाता है। यह रहस्यवादी की प्रथम परिस्थिति है। इस परिस्थिति का वर्णन कबीर ने बड़ी सुन्दर रीति से किया है:—

घट घट में रटना लागि रही,
परघट हुआ अलेख री।
कहुँ चोर हुआ, कहुँ साह हुआ,
कहुँ बाम्हन है कहुँ भेख जी॥

तात्पर्य यह है कि यहाँ संसार की सभी वस्तुएँ अनंत शक्ति में विश्राम पाती हैं और सभी अनंत सत्ता में आकर मिल जाती हैं। यहाँ रहस्यवादी ने अपने लिए कुछ भी नहीं कहा है, वह चुप है। उसे ईश्वर की इस अनंत शक्ति पर आश्चर्य-सा होता है। वह मौन होकर इन बातों को देखता-सुनता है। यद्यपि ऐसे समय वह अपना व्यक्तित्व भूल जाता है पर ईश्वर की अनुभूति स्वयं अपने हृदय में पाने में असमर्थ रहता है। इसे हम रहस्यवादियों की प्रथम स्थिति कहेंगे।

द्वितीय स्थिति तब आती है जब आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लग जाती है। भावनाएँ इतनी तीव्र हो जाती हैं कि आत्मा में एक प्रकार का उन्माद या पागलपन छा जाता है। आत्मा मानों प्रकृति का रूप रख पुरुष—आदि पुरुष—से प्यार करती है। संसार की अन्य वस्तुएँ उसकी नजर से हट जाती हैं। आश्चर्य-चकित होने की अवस्था निकल जाती है और रहस्यवादी चुपचाप अपने आराध्य को प्यार करने लग जाता है। वह प्यार इतना प्रबल होता है कि उसके समक्ष विश्व की कोई चीज नहीं ठहर सकती। वह प्रेम बरसात के उस प्रबल नाले की भाँति होता है जिसके सामने कोई भी वस्तु नहीं रुक सकती। पेड़, पत्थर, झाड़, झंखाड़ सब उस प्रवाह में बह जाते हैं। उसी प्रकार इस प्रेम के आगे कोई भी वासना नहीं ठहर

सकती। सभी भावनाएँ, हृदय की सभी वासनाएँ बड़े जोर से एक ओर को बह जाती हैं और एक—केवल एक—भाव रह जाता है, और वह है प्रेम का प्रबल प्रवाह। जिस प्रकार किसी जल-प्रपात के शब्द में समीप के सभी छोटे-छोटे स्वर अन्तर्हित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार उस ईश्वरीय प्रेम में सारे विचार या तो लुप्त ही हो जाते हैं, अथवा उसी प्रेम के बहाव में बह जाते हैं। फिर कोई भावना उस प्रेम के प्रबल प्रवाह के रोकने को आगे नहीं आ सकती।

इसके पश्चात् रहस्यवादियों की तीसरी स्थिति आती है जो रहस्यवाद की चरम सीमा कहला सकती है। इस दशा में आत्मा और परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि फिर उनमें कोई भिन्नता नहीं रहती। आत्मा अपने में परमात्मा का अस्तित्व मानती है और परमात्मा के गुणों को प्रकट करती है। जिस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में आग और लोहे का एक गोला, ये दोनों भिन्न हैं पर जब आग से तपाए जाने पर गोला भी लाल होकर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेता है तब उस लोहे के गोले में वस्तुओं के जलाने की वही शक्ति आ जाती है जो आग में है। यदि गोला आग से अलग भी रख दिया जाय तो भी वह लाल स्वरूप रखकर अपने चारों ओर आँच फेकता रहेगा। यही हाल आत्मा का परमात्मा के संसर्ग से होता है। यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में माया के वातावरण में आत्मा और परमात्मा दो भिन्न शक्तियाँ जान पड़ती हैं पर जब दोनों आपस में मिलती हैं तो परमात्मा के गुणों का प्रवाह आत्मा में इतने अधिक वेग से होता है कि आत्मा के स्वाभाविक निज के गुण तो लुप्त हो जाते हैं और परमात्मा के गुण प्रकट जान पड़ते हैं। यही अभिन्न सम्बन्ध रहस्यवादियों की चरम सीमा है। इसका फल क्या होता है!

—गम्भीर एकांत सत्य का परिचय

—परम शांति की अवतारणा

—जीवन में अनंत शक्ति और चेतना

—प्रेम का अभूत-पूर्व आविर्भाव

—श्रद्धा और भय......

—भय, वह भय नहीं जिससे जीवन की शक्तियों का नाश हो जाता है किंतु वह भय जो आश्चर्य से प्रादुर्भूत होता है और जिसमें प्रेम, श्रद्धा और आदर की महान शक्तियाँ छिपी रहती हैं। ऐसी स्थिति में जीवन में व्यापक शक्तियाँ आती हैं और आत्मा इस बंधनमय संसार से ऊपर उठकर उस लोक में पहुँच जाती है जहाँ प्रेम का अस्तित्व है और जिसके कारण आत्मा और परमात्मा में कुछ भिन्नता प्रतीत नहीं होती। अनंत की दिव्य विभूति जीवन का आवश्यक अंग बनाती है और शरीर की सारी शक्तियाँ निरावलंब होकर अपने को अनंत की गोद में फेंक देती हैं।

जिस प्रकार मछलियाँ समुद्र में तैरती हैं, जिस प्रकार पक्षी वायु में झूलते हैं, तेरे आलिंगन से हम विमुख नहीं हो सकते। हम साँस लेते हैं और तू वहाँ वर्तमान है।

इस प्रकार रहस्यवादी दैवी शक्ति से युक्त होकर संसार के अन्य मनुष्यों से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसका अनुभव भी अधिक विस्तृत और आध्यात्मिक हो जाता है। उसका संसार ही दूसरा हो जाता है और वह किसी दूसरे ही वातावरण में विचरण करने लगता है।

किंतु रहस्यवादी की यह अनुभूति व्यक्तिगत ही समझनी चाहिए। उसका एक कारण है। वह अनुभूति इतनी दिव्य, इतनी अलौकिक होती है कि संसार के शब्दों में उसका स्पष्टीकरण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। वह कांति दिव्य है, अलौकिक है। हम उसे साधारण आँखों से नहीं देख सकते। वह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगंधि ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि उसे हम किसी प्रशांत-वन में नहीं देख सकते

वरन् उसे कल-कल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की भाषा इतनी ओछी है कि उसमें हम पूर्ण रीति से रहस्यवाद की अनुभूति प्रकट ही नहीं कर सकते। दूसरी बात यह कि रहस्यवाद की यह भावुक विवेचना समझने की शक्ति भी तो सर्वसाधारण में नहीं है। रहस्यवादी अपने अलौकिक आनंद में विभोर होकर यदि कुछ कहता है तो लोग उसे पागल समझते हैं। साधारण मनुष्यों के विचार इतने उथले हैं कि उनमें रहस्यवाद की अनुभूति समा ही नहीं सकती। इसीलिए 'अलहल्लाज-मंसूर' अपनी अनुभूति का गीत गाते गाते थक गया पर लोग उसे समझ ही नहीं सके। लोगों ने उसे ईश्वरीय सत्ता का विनाश करने वाला समझ कर फाँसी दे दी। इसी लिए रहस्यवादियों को अनेक स्थलों पर चुप रहना पड़ता है। उसका कारण वे यही बतला सकते हैं कि—

'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ, आज अनश्वर गीत।'

—डा० रामकुमार वर्मा

छायावाद

कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से—जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी—इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन

भाव आन्तरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यन्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था। हिंदी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यन्तर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्द-विन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।

बाह्य उपाधि से हट कर आन्तरहेतु की ओर कवि-कर्म प्रेरित हुआ। इस नए प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई हिंदी में पहले वे कम समझे जाते थे; किंतु शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द-विशेष का नवीन अर्थ द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का बहुत हाथ होता है। अर्थ-बोध व्यवहार पर निर्भर करता है, शब्द शास्त्र में पर्यायवाची तथा अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण हैं। इसी अर्थ-चमत्कार का माहात्म्य है कि कवि की वाणी में अभिधा से विलक्षण अर्थ साहित्य में मान्य हुए।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतन्त्र लावण्य रखता है। मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और कान्ति का सृजन करती है। इस वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है। वैदग्ध्य भंगी भणिति में शब्द की वक्रता और अर्थ की वक्रता 'लोकोत्तीर्ण' रूप से अवस्थित होती है। यह रम्यच्छायान्तरस्पर्शी वक्रता वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक में होती है।

कभी-कभी स्वानुभाव संवेदनीय वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए सर्वनामादिकों का सुन्दर प्रयोग इस छायामयी वक्रता का कारण होता है—'वे आँखें कुछ कहती हैं।' किंतु ध्वनिकार ने इसका प्रयोग ध्वनि के भीतर सुन्दरता से किया। यह ध्वनि प्रबन्ध, वाक्य, पद और वर्ण में दीप्त होती है। केवल अपनी भंगिमा के कारण 'वे आँखें' में 'वे' एक विचित्र तड़प उत्पन्न कर सकता है। कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा-भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किंतु यौवन के भीतर रमणी सुलभ श्री की बहिन ही है, घूँघट वाली लज्जा नहीं। संस्कृत-साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अपने लिए अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है।

इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष-काल में अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की भी थी, किंतु आन्तर अर्थ-वैचित्र्य को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं। उन्होंने उपमाओं में भी आन्तर सारूप्य खोजने का प्रयत्न किया था।

'निरहंकार मृगांक', 'पृथ्वी गतयौवना', 'संवेदन मिवाम्बर', मेघ के लिए 'जनपद वधु लोचनैः पीयमानः' या कामदेव के कुसुम शर के लिए 'विश्वसनीयमायुधं' ये सब प्रयोग बाह्य सादृश्य से अधिक आन्तर सादृश्य को प्रकट करनेवाले हैं। इस प्रकार की अभिव्यंजनाएँ बहुत मिलती हैं। इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक हैं।

प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण

करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। बाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।

जब 'वदति विकलं कापोत मुञ्चति चेतनाम्' की विवशता वेदना को चैतन्य के साथ चिरबन्धन में बाँध देती है, तब वह आत्म-स्पर्श की अनुभूति, सूक्ष्म आन्तर भाव को व्यक्त करने में समर्थ होती है। ऐसा छायावाद किसी भाषा के लिए शाप नहीं हो सकता। भाषा अपने सांस्कृतिक सुधारों के साथ इस पद की ओर अग्रसर होती है, उच्चतम साहित्य का स्वागत करने के लिए। हिंदी में आरम्भ के छायावाद ने अपनी भारतीय साहित्यिकता का ही अनुसरण किया है। कुन्तक के शब्दों में 'अतिक्रान्त प्रसिद्ध व्यवहार सरणि' के कारण कुछ लोग इस छायावाद में अस्पष्टवाद का भी रंग देख पाते हैं। हो सकता है कि जहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो; वहाँ अभिव्यक्ति विशृंखल हो गई हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो, परन्तु सिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, छाया-मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है। हाँ मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है; इसलिए प्रकृति काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धान्त भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य-धारा में होने लगा है, किंतु प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।

छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति

रहस्यवादी प्रेम करता है। इसी से रहस्यवादी का ब्रह्म प्रिय और प्राप्य है।' रहस्यवाद में मनुष्य का रागात्मक पक्ष अधिक विकसित और उन्नत रहता है।

रहस्यवाद में प्रेम की प्रधानता का यह आशय नहीं है कि इसमें जीवन के अन्य पक्षों का अभाव है। 'सच्ची रहस्यात्मकता का मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व की आंशिक संतुष्टि से विरोध है। यह कहती है कि परिभाषा, वर्णन और अभिव्यंजना से अधिक (व्यापक) मनुष्य की इच्छा, जीवन और अनुभव है। सच्चे रहस्यवाद में केवल 'समाधि' या 'हाल' का धार्मिक भावावेश नहीं होता। इसमें सामान्यतः एक-दूसरे से पृथक् समझे जानेवाले रागात्मक और बौद्धिक पक्षों में पुनः सामंजस्य स्थापित होता है और मस्तिष्क या बुद्धि द्वारा विभक्त ये दोनों पक्ष फिर एक में मिल जाते हैं। रहस्यवाद से संपूर्ण व्यक्तित्व का संबंध रहता है।

रहस्यवादियों का कहना है कि उस 'परम सत्ता' की प्राप्ति ऊपरी मस्तिष्क से नहीं हो सकती क्योंकि यह तो लौकिक सत्ता और भेद-भावना में ही लीन रहता है। वे मनुष्य की दूसरी सुप्त शक्ति प्रातिभ ज्ञान की ओर संकेत करते हैं। यह प्रातिभ ज्ञान रहस्यवादियों का प्रधान साधन और रहस्यवाद का प्रधान अंग है। साधना के कुछ उपाय—जिनमें ध्यान प्रमुख है—चेतनावस्था में ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं कि जिससे यह सोई हुई शक्ति जग पड़ती है। ज्यों-ज्यों इस शक्ति (प्रातिभ ज्ञान) का प्रवेश हमारे चेतन जीवन में होता जाता है त्यों-त्यों मनुष्य रहस्यवादी बनता जाता है।

अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों या उप-लक्षणों (यद्यपि ये अपरिपूर्ण सिद्ध होते हैं) का आश्रय रहस्यवादी के लिए अनिवार्य हो जाता है। इनके द्वारा अपनी अनुभूति की तीव्रता का प्रकाशन असंभव है। केवल शब्द के सहारे आभास मात्र देकर पाठकों के सोए हुए प्रातिभ ज्ञान को उद्बुद्ध कर रहस्यवाद के प्रतीक काव्य

प्रच्छन्न और अव्यक्त का उल्लेख है वही 'रहस्यवाद' है। आवरण को निवारण करने की प्रवृत्ति है। उपनिषदों में उसी 'प्रच्छन्न' को देखने का कुतूहल है। यह जगत क्या है—मैं (आत्मा) क्या हूँ? 'आत्मा' और 'जगत' का क्या सम्बन्ध है? जगत' किसकी सृष्टि है? वह (सः) कौन है? सः, जगत और आत्मा के बीच क्या कोई 'शृंखला' है? ये प्रश्न हैं जो 'दर्शनों' में अनेक तर्क-वितर्कमय उत्तरों के पश्चात् भी प्रश्न ही बने हुए हैं। उनका निष्कर्ष है; वह (सः) अनुभव किया जा सकता है—उसका वर्णन नहीं हो सकता। ईसाई दार्शनिक कहते हैं, 'प्रेमिका के उभार भरे वक्षस्थल का जैसे कोई उन्मत्त प्रेमी आलिंगन करता है और उससे जो कुछ मीठा मीठा कुछ भीतर ही भीतर घुसने लगता है—कुछ ऐसा ही उसके सान्निध्य का अनुभव होता है।' बौद्ध इस प्रश्न पर मौन धारण कर लेता है; वेदान्ती 'नेति नेति' (यह नहीं, यह नहीं) कहकर रुक जाता है।

अद्वैतवादी भी उसको अपने ही में देखता है। इसी से वह कहता है—सोऽहम्—मैं ही वह हूँ। वह आत्मा में ही परमात्मा को अधिष्ठित देखता है और जगत को मिथ्या समझता है। उसका विश्वास है कि आत्मा पर माया का आवरण पड़ा रहने से हम 'उसके' दर्शन नहीं कर पाते। आवरण को विदीर्ण कर ही हम पर उसकी आभा का प्रकाश पड़ता है, और हम उसे अपने में अनुभव करने लगते हैं।

सूफी और अद्वैतवादी (निर्गुणवादी) दोनों ही जगत को मिथ्या मानते हैं; परंतु सूफी जगत के 'रूप' में परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करता है। उसे वह परमात्मा के विरह में व्याकुल देखता है। इसी से परमात्मा तक पहुँचने के लिए वह भौतिक वस्तु के प्रति आसक्ति धारण कर प्रेम-विभोर हो जाता है। उसका साधन प्रेम है और साध्य भी प्रेम।

द्वैतवादी (सगुणोपासक) आत्मा (जीव) को ब्रह्म से पृथक् मानता है। वह द्वैतवादी की तरह दोनों को एक नहीं मानता। वह सायुज्य मुक्ति की कामना भी नहीं करता। अपने आराध्य को अपलक आँखों से देखते रहने और उसका सान्निध्य शाश्वत बनाए रखने में ही अपने को कृतकृत्य मानता है। उसे अपना आराध्य ही सब कुछ है और उसके बिना सब कुछ नहीं। वह धार्मिक ग्रंथों में रंजित स्वर्ग की कामना भी नहीं करता।

सांसारिक संघर्षों से दूर रहकर मनुष्य ऐसी स्थिति में पहुँचना चाहता है, जहाँ केवल आनंद की ही वर्षा होती है। जीवन के विविध ताप, दुख, पिघलकर बह जाते हैं। उपनिषदकार कहते हैं—'यह सृष्टि आनंद से ही उत्पन्न हुई है। आनंद की ओर ही इसकी गति है और आनंद में ही स्थिति।'

'दर्शन' तर्क और ज्ञान से 'रहस्य' के समझने का आग्रह करता है, काव्य उसे अपने में आच्छादित कर लेने की व्याकुलता प्रकट करता है। दर्शन 'चिंतन' है—विचार है; कविता अनुभूति है, भाव है। 'दर्शन' 'उसे' दूर रखकर खुली आँखों से देखने की चेष्टा करता है; काव्य उसे अपने ही में उतार कर निमीलित नेत्रों से उसका दर्शन करता है। जहाँ 'रहस्य' के प्रति हमारा 'राग' जाग उठता है, हम 'उसकी' ओर अपने को भूलकर खिंचने लगते हैं; वहीं काव्य की भूमिका प्रस्तुत हो जाती है। 'रहस्य' की ओर खिंचाव-आकर्षण ही रहस्यवादी कविता को जन्म देता है। 'रहस्य' जैसा कि अभी तक के विवेचन से स्पष्ट है, उस 'परोक्ष' सत्ता को कहते हैं जो हमारी पार्थिव आँखों से ओझल है, परे है। उसी को अनुभव करने, पहचानने की ललक-चाह रहस्यवादी कविता में दीख पड़ती है। अपनी प्रवृत्ति और विश्वास-भावना के अनुसार एक रहस्यवादी जगत में परोक्ष सत्ता का आभास पाकर उसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर हर्ष पुलक से भर जाता है, दूसरे जगत को

असीम मान उससे विरक्त हो अपने भीतर ही उस नाद के दर्शन कर आत्मविभोर हो जाता है। इस प्रकार के द्रष्टा को आत्मवादी या व्यक्तिवादी भी कह सकते हैं. तीसरा किसी व्यक्ति ही को 'उसका' प्रतीक मानकर उसमें अपनी भावनाओं को केंद्रित कर उसी का सान्निध्य चाहता है।

इस प्रकार रहस्यवादी अपनी आत्मा के चेतन को खोजने के लिए उन्मुख होता है। स्थूल प्रकृति में समष्टि रूप में चेतना का आरोप कर उससे अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है और उसे अपना ही अंश अनुभव करने लगता है। और वह व्यक्ति ही में परोक्ष चेतन का आरोप कर भी आत्मविस्मृत हो जाता है। प्रत्येक रहस्यवादी के लिए आकर्षण के आधार पर एक होना आवश्यक नहीं, पर उस आधार में, उस रहस्यमयी परोक्ष सत्ता की अनुभूति में उसका एक होना निश्चय ही आवश्यक है।

—प्रो० विनय मोहन शर्मा।

(२)

छायावाद रहस्य प्रवृत्ति का प्राधान्य है। एक प्रकार से अद्भुत और रहस्य उसके आधार-भूत तत्व हैं। इसका कारण है भौतिकता के विरुद्ध प्रतिवर्तन। द्विवेदी कालीन कवियों की क्रीड़ा-भूमि उनका निकटवर्ती पार्थिव संसार रह गया था, अतः स्वभावतः ही उनका विरोध करने वाले कवि दूर-सुँधले एक रहस्यमय लोक की ओर बढ़ने लगे। इसके लिये इन्हें कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि, अँगरेजी के भावयोगी कवि तथा हिंदी के प्राचीन रहस्यवादियों से विशेष प्रोत्साहन मिला और वे उस अज्ञात के प्रति जिज्ञासा प्रकट करने लगे। वास्तव में यह प्रतिवर्तन का ही फल था और हमारे भावुक कवि किसी धार्मिक प्रेरणा से इस ओर इतने आकृष्ट नहीं हुए थे जितने की अपनी भावुकता और कल्पना से

लिए एक विस्तृत क्षेत्र पा जाने के कारण आधुनिक छायावाद को विशेष आध्यात्मिक दृष्टि से देखना उचित न होगा क्योंकि एक तो यह युग ही धार्मिकता का नहीं है, दूसरे हमारे प्रतिनिधि कवियों का जीवन भी अधिकांश में पाश्चात्य प्रभावों से निर्मित है। केवल काव्य-वस्तु के रूप में उन्होंने इस काव्य-शिशाखा और उससे संबंध रखनेवाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों को अपनाया है। हाँ, अपनी विकसित चिंतनशक्ति और विस्तृत दार्शनिक अध्ययन के द्वारा उसको पचाने का सफल प्रयत्न अवश्य किया है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने बौद्ध दर्शन, एवं कविवर प्रसादजी व निरालाजी ने भारतीय अद्वैतवाद का अच्छा मनन किया है। फलतः उनके काव्य में भावुकता और दार्शनिकता का सुंदर समन्वय है। कविवर पंत ने भी पौर्वात्य और पाश्चात्य दर्शन के अध्ययन द्वारा कुछ मौलिक सिद्धांतों की सृष्टि और उनका सुंदर काव्यमय प्रयोग किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे कवियों का रहस्यवाद उनकी आत्मानुभूति का फल तो किसी प्रकार नहीं हो सकता। हाँ, रहस्य-प्रवृत्ति के कारण उनकी वृत्ति इसमें काफी रमी और कल्पना एवं चिंतन-शक्ति के बल पर उन्होंने इन रहस्यमय प्रश्नों पर काव्य का सुनहरा आवरण बड़े सुचारु रूप से चढ़ाया। कुछ कवियों की कृतियाँ इनका अपवाद भी हैं। जैसे कविवर मैथिलीशरण की 'झंकार'—उसमें धार्मिकता न देखना कवि के व्यक्तित्व के प्रति अन्याय होगा। एक बात अवश्य है कि झंकार का कवि भक्ति-पथ का पथिक होने के कारण रहस्यवादी रचनाएँ करने में बहुत अधिक सफल नहीं हो सका।

—प्रो० नगेंद्र

(४)

कवि ने गूढ़ आध्यात्मिक भावों के प्रच्छन्न प्रवाह को छायावाद कहते हैं। परंतु यह प्रच्छन्न प्रवाह इतना अधिक प्रच्छन्न न हो कि पढ़नेवाले

को समझ ही में न आवे। छायावाद क्रम-हीन कल्पना-समूह को नहीं कहते। किसी भी साहित्य में छायावाद का स्थान सबसे अंत में आता है। सृष्टि-सौंदर्य का निरीक्षण करना तो कवि का सबसे प्रथम कर्तव्य है, द्वितीय स्थान सांसारिक वस्तुओं का और तृतीय आध्यात्मिक विषयों का हुआ करता है। छायावाद का स्थान तो इन सबके भी पीछे आता है। यही क्रम ठीक भी है। शैली ने कहा है कि अन्त में सभी नास्तिक हो जाते हैं। इन शब्दों में सत्य कूट-कूट कर भरा है। यह पथ हमें मन और बुद्धि के परे एक अशांत प्रदेश में ले जाता है। यद्यपि यह प्रदेश मेघ-आच्छन्न होता है तथापि उस पर विद्युल्लता की अपूर्व छटा होती है। उसके दर्शन से जो आनंद प्राप्त होता है वह अनिर्वचनीय है। छायावाद कविताकला का एक अपूर्व निदर्शन है. कवि की लेखनी का चातुर्य और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चमत्कार छायावाद ही में देख पड़ता है। यह आंतरिक गूढ़ भावों के प्रकाशन का एक विलक्षण शैली है। हिंदी में छायावाद कोई नवीन विषय नहीं है। कबीर, सूर तथा अन्य भक्त कवियों ने इस पर बहुत कुछ लिखा है। मध्यकालीन कवियों ने जो प्रायः शृंगार के ही उपासक थे इसका प्रयोग करना छोड़ दिया था। आधुनिक काल में इसका पुनर्जन्म हो रहा है। परंतु आजकल का छायावाद पहले से बहुत भिन्न है। वैसे तो इसका प्रथम स्रोत अँगरेजी-साहित्य है जहाँ से यह बँगला साहित्य में आया और इसकी कुछ-कुछ छाया हिंदी के आधुनिक छायावाद में भी देख पड़ी। परंतु तुलनात्मक अध्ययन करने से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि हमारा आजकल का छायावाद हमारे कवियों का स्वाधीन उपज है और उनकी कल्पना, उनकी भाव-व्यंजना उनका कौशल पूर्ण रूप से उन्हीं का है। केवल थोड़ी समानता यह नहीं सिद्ध कर सकती कि यह कहीं अन्यत्र से लिया गया है।

—प्रो० ललिता प्रसाद सुकुल

(५)

हिंदी कविता का परिष्करण उस सीमा तक हो गया था कि कवि अपनी मौलिक भावनाओं को आत्मा के रहस्यों की ओर प्रेरित कर दे। वस्तु स्थिति को गौण मानकर भावनाओं के अंतरतम प्रदेश का अन्वेषण कवि की प्रतिभा का आवश्यक अंग बन गया। इसी भावना-जगत का स्पष्टी-करण नवीन धारा के कवि प्रसाद, निराला और पंत की रचनाओं में मिला। प्रसाद ने 'आँसू' से प्रारंभ कर 'कामायनी' में हृदय की प्रवृत्तियों का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया। उसमें प्रसादजी के अध्ययन का गांभीर्य स्पष्ट रूप से है। जीवन के इसी गांभीर्य में रहस्यवाद का सूत्रपात हुआ है जिसकी सर्व-प्रथम अभिव्यक्ति प्रसादजी की रचनाओं में हुई। श्रीनिराला ने इसी मनोवैज्ञानिक तत्व को दर्शन की जटिल शृंखलाओं में कसकर भी कलात्मक रूप में हमारे समाने रक्खा। यद्यपि मुक्त-वृत्त की असंयत पदावली हिंदी की संगीत प्रिय परंपरा को ग्राह्य नहीं हो सकी तथापि जिस उन्मेष और आवेग से निराला ने काव्य की रेखा खींची वह हिंदी में अमिट होकर रह गई। पंडित सुमित्रानंदन ने निराला के विपरीत कविता में उत्कृष्ट संगीत की सृष्टि की। उन्होंने भावों को जिस कोमल रूप में देखा, उसी कोमल रूप में उनके शब्द भी सुसज्जित हुए। पंत की भाव-धारा में संसार की समस्त अभिव्यक्ति बड़े मोहक रूप में उपस्थित हुई। पंत में प्रसाद और निराला का दर्शन भी संगीत का रूप रखकर आया। पंत में यदि कोई दोष है तो वह यह कि उनमें जीवन का आवेग नहीं है। उनमें जीवन की वह कोमलता है जो पुरुष में शृंगार की भावना लिए हुए है। इसमें कुछ संदेह नहीं कि उन्होंने इधर जीवन की वास्तविकता को भी कविता की रेखाओं से बाँधने का प्रयत्न किया है। 'नारी' शीर्षक रचना में उन्होंने यथार्थवाद को साम्यवाद के रूप में चित्रित किया है, किंतु इस प्रकार की रचना में काव्य का वह रूप प्रस्फुटित नहीं हुआ जो अमर रह

सके। उनमें न तो संकेत ही है, और न व्यंजना। इन दोनों के बिना कविता की ध्वनि समय की दूर दिशाओं में जाने में असमर्थ है। अतः भौतिकवाद तभी कविता का अंग हो सकता है जब उसमें चित्रित भावनाओं की व्यंजनात्मक ध्वनि हो। पंत की नवीन दशा में प्रयास भले ही श्लाघ्य हो, लेकिन कविता के दृष्टिकोण से अभी उसमें परिष्करण नहीं हुआ। प्रसाद, निराला और पंत की भावनाओं का संकेत पाकर नवीन धारा के उत्तरकालीन तीन कवि श्रीमहादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा और भगवतीचरण वर्मा, जीवन के अन्तर्हित रहस्यों को उद्घाटित करने में समर्थ हुए। तीनों का भाव-जगत् स्थूल संसार में भी सूक्ष्म प्रवृत्तियों को खोजने में समर्थ हो सका, यद्यपि तीनों की शैली भिन्न-भिन्न मार्ग के अनुसरण में संलग्न हुई। श्रीमती महादेवी ने पीड़ा की परिधि से अपने में समस्त भाव-जगत को बसाया। उन्होंने जीवन के विनाश को जीवन का एक क्रम मानते हुए उसे स्वीकार किया और उसी में आत्मा का निर्वाण माना। अपने को केंद्र विंदु मानते हुए महादेवी ने अपने आराध्य की परिधि के चारों ओर खींच लिया है। उन्होंने अपने दीपों के आवरण में ही जीवन को प्रकाशमान करने के उपकरण प्राप्त किए हैं। जलन को अनिवार्य मानकर उन्होंने उसी शांति की कल्पना की है। श्रीरामकुमार वर्मा ने संसार की सरहीनता में अपने आराध्य को और भी स्पष्ट पाया है। रामकुमार में रहस्यवाद की भावना प्रखर है। संकेत उनका साधन है। संसार के मिटने में उन्हें क्षोभ है, रूप के विनाश में उन्हें कष्ट है, लेकिन उसके खँडहरों में वे अपने आध्यात्मिक जीवन का निर्माण करना चाहते हैं। वस्तुतः महादेवी और रामकुमार के दृष्टिकोण में अधिक भेद नहीं है। दोनों का आदर्श एक ही है, पर महादेवी ने पीड़ा और प्रेम प्रधान माना है, रामकुमार ने करुणा और रूप को। महादेवी ने अपने आराध्य को स्पष्ट पाया है, रामकुमार ने संकेत में। श्रीभगवतीचरण वर्मा ने जीवन का सूक्ष्म तत्त्व जीवन के उद्वेग में

प्राप्त किया है। वे वस्तुवाद के कायल हैं और समस्त भाववेग से वे संसार के चित्र खींचकर उनसे निष्कर्ष निकालना चाहते हैं। भगवती-चरण में संकेत बिलकुल नहीं है और न आध्यात्मिक ध्वनि है। वे स्पष्टवादी हैं। और सम्पूर्ण बल से संसार को समेट कर उसे कुछ तत्वों में केंद्रीभूत कर देते हैं। भगवतीचरण वर्मा का आवेश ही उनके काव्य का जीवन है। इन तीनों कवियों के बाद इस शैली के अनेक कवि हैं जिन्होंने पूर्वोक्त कवियों के सिद्धांतों को विविध दृष्टि-कोणों से पुष्ट किया है।

—डा० धीरेंद्र वर्मा

में ईश्वरीय अलौकिकता की भव्य महानता सम्बन्धी अनुभूति मानव की संकुचित वृत्तियों का लोप कर देती है, और तब देश, समाज और धर्म के संकुचित क्षेत्रों और विचारों से बहुत ऊपर उठ रहस्यवादी भावना से ऐसे लोक में पहुँचता है जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, वासना, भोग आदि असंतुष्टकारी और उद्वेगोत्तेजक वृत्तियाँ फटक नहीं सकतीं। इस समय मानव-मन परम प्रफुल्लित हो जाता है। तन्मयता अथवा लीनता की यह स्थिति अति आनन्ददायिनी होती है। अस्तु।

परम शक्ति की चतुर्दिक व्यक्त दिव्य महत्ता से चमत्कृत और आनन्द-विभोर जीवात्मा की अनुभूति की उस व्यंजना को रहस्यवाद कहते हैं जिसमें अपने मूल कारण से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने की महत् भावना निहित हो। जीवात्मा की सजग और सभाव वृत्ति चारों ओर फैले हुए अनन्त और अलौकिक सौंदर्य का सप्रेम निरीक्षण करती है। हृदय प्रसन्नता से नाच उठता है, अलौकिक आनन्द-सागर में मग्न होने लगता है। जीवात्मा जैसे सोचती है— जिस परम सत्ता की सृष्टि इतनी सुन्दर, इतनी विशाल, इतनी भव्य, इतनी रम्य है, स्वयं वह, उसका रूप, उसकी शक्ति कितनी महान् होगी। शरीर और मन की सभी चेष्टाएँ और वृत्तियाँ जब सुख, संतोष, और शांति के लिए लालायित हैं, तब उस परम रमणीक सृष्टि के अलौकिक कर्त्ता से बढ़कर सुखद, संतोषप्रद और शांतिदायी कौन होगा? क्यों न इसी से अपना अटूट और निश्छल सम्बन्ध स्थापित किया जाय? इस उत्कट सद्भावना की अकृत्रिमता जीवात्मा को विशेष बल प्रदान करती है। परम दिव्य और अलौकिक सत्ता के [illegible] का यह प्रथम चरण है। [illegible] पर [illegible] होकर जीवात्मा [illegible] हो जाती है, जहाँ उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। उसका 'मैं' [illegible] 'तू' में लीन हो जाता है। [illegible] प्रकृति [illegible]'

के रम्य रूप का दर्शन कराती प्रतीत होती है, जीव-जंतु, पशु-पक्षी सभी प्राणी चरम सत्तामय प्रतीत होते हैं। लीनता की इस स्थिति में अभिव्यंजित विचार रहस्यवाद के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

दिव्य सत्ता में लीनता का प्रधान लक्षण है जीवात्मा का अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता को भूल जाना। जीव में द्वैत भावना के बने रहने तक निजता, सांप्रदायिकता, एकदेशता जैसी संकुचित भावनाएँ घर किए रहती हैं; इनके पोषण और प्रचार में उसे आनन्द भी मिलता है। शारीरिक और इन्द्रिय सुख की प्रधानता के प्रति अनासक्ति की भावना का उसमें उदय नहीं होता और भौतिकता-वादिता पर पूर्ण विजय भी उसे नहीं मिलती। परन्तु जिस क्षण अलौकिक सत्ता से शांत सम्बन्ध करने की लालसा प्राणी की अन्य वृत्तियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगती है उसी पल से बाह्य जगत की स्थूलता से परे उसमें अंतर्हित परम शक्ति के देदीप्यमान अंश का दर्शन करने की दिव्य अन्तर्दृष्टि जीवात्मा को मिल जाती है जो सामाजिकता और लौकिकता की भावनाओं से बहुत ऊपर उठ, निजता और अहम् की वासना का अनायास त्याग कर देती। इस स्थिति से पूर्व तक इंद्रियाँ निजी कार्यों के सम्पादन द्वारा शारीरिक धर्म का पालन करती रहती है और इस प्रकार मानसिक शक्ति के पूर्ण नियंत्रण में उन्हें रहना पड़ता है। अलौकिक सत्ता से सम्बन्ध की दिव्य अनुभूति का आभास होते ही मानसिक नियंत्रण का बंधन शिथिल होने लगता है, इंद्रियों की निजी चेतन शक्ति क्रमशः कम होती जाती हैं। अन्त में पूर्णानुभूति की दशा में पहुँचने पर वे ज्ञानशून्यता के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं; अपने किसी कर्तव्य का स्वतन्त्र ज्ञान उन्हें नहीं रह जाता। 'मेरा-तेरा' की मोह-ममता से तब मुक्ति पाकर जीवात्मा ब्रह्मानंद का अनुभव करती है और हृदय दिव्य प्रेममय हो जाता है।

यह हुई रहस्यवादियों के व्यक्तिगत अनुभव की बात। पश्चात्,

इस अनुभूति की व्यंजना के लिए प्रस्तुत होने पर कठिनाई यह उपस्थित होती है कि वर्णन करते समय कवि स्वयं भावलीनता की मूल स्थिति में नहीं होता। अतः तन्मयता का मूलानन्द तो अव्यक्त और रहस्यमय ही रहता है और कल्पना के भाववश्य सहयोग द्वारा उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति से ही कवि को सतुष्ट होना पड़ता है। इस कविता की विशेषता यह है कि पार्थिव वस्तुओं का वर्णन रचयिता का उद्देश्य न होने के कारण सूक्ष्म और अमूर्त उपमेय-उपमानों के सहारे कवि-कल्पना को स्वच्छन्द उड़ान का परिचय इसमें मिलता है। रहस्यवादी कविता की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है।

प्रकृति के परम रम्य रूपों के प्रति प्रेममय आकर्षण का अनुभव करने पर कवि की सहृदयता सजग हो जाती है। उसकी आंतरिक अनुभूति प्रत्येक प्राकृतिक क्रिया-कलाप में ईश्वरीय सत्ता का आनन्ददायक अनुभव करती है। विश्व के समस्त व्यापारों को संचालक-शक्ति का परिचय पाने के लिए जो जीव आदि काल से विकल है, उसका परिचय पाने और साक्षात्कार करने के लिए न जाने कब से उतावला है, इन प्राकृतिक क्रियाओं को नियमितता, निरंतरता और व्यापकता से चमत्कृत होकर ईश्वरीय अस्तित्व के संबंध में अपनी कल्पना को इन प्रमाणों द्वारा सत्य सिद्ध होते देख आनंद प्रफुल्लित हो जाता है। अनेक रूपों में प्रयत्न करने पर भी उस सत्ता का दर्शन न कर सकने पर साधकों का एक वर्ग जिसे अज्ञेय, अरूप, अनाम, अनादि, अव्यक्त आदि कहकर अपने को संतोषमय भुलावा देता रहा है, वहां के अस्तित्व को पूर्णतः स्वीकार, और सृष्टि की समस्त सुंदरता, शक्ति और चेतनता का आदि स्रोत मान दूसरे वर्ग ने रम्य साकार मूर्तियाँ निर्मित कीं। प्रथम वर्ग गंभीर दार्शनिकों, वेदांतियों और ज्ञानियों का है, और द्वितीय सहज-सरल स्वभाववाले भक्तों का जो चिन्तन की शुष्कता और नीरसता की उपेक्षा कर आशामयी और विश्वासवादिनी श्रद्धा को सर्वस्व मानते हैं, इन दोनों वर्गों में प्रायः

सैद्धांतिक विरोध रहता है। इनका मध्यवर्ती वर्ग है रहस्यवादियों का जिन्हें हम श्रद्धालु दार्शनिक कह सकते हैं।

जड़-चेतनमय विश्व में प्रकृति ने मानव-मात्र का संगठन पार्थिव-अपार्थिव दोनों परमाणुओं से किया है। स्थूलता और सूक्ष्मता दोनों ही उसके निर्माण के लिए प्रयुक्त हैं। प्रथम से आशय बाह्याकार—ज्ञान और कर्मेंद्रिय से युक्त—'अस्थि चरममय देह' से है और द्वितीय से तात्पर्य अंतर्जगत से। इस प्रकार स्थूलता दृश्यमान बाह्य जगत का अंश है तो सूक्ष्मता अदृश्य और अव्यक्त का। मनुष्य की ज्ञान और कर्मेंद्रियाँ शैशव से ही पार्थिवता के प्रति उदासीनता दिखाना आरंभ करें, ऐसा तो साधारणतः होता नहीं; सहज और स्वाभाविक यही है कि आरंभ में तो जगत के प्रति उसमें आसक्ति का जन्म हो, और आगे चलकर जीवन के सुखमय क्षणों में उसकी लुभावनी और रुचिकर योजनाएँ, कल्पनाएँ और आशाएँ असंभावित आघातों से चूर-चूर हों जिसके फलस्वरूप विश्व-नियंता की सत्ता का लोहा मानने को वह विवश हो जाय। सारांश यह कि जीवन के घात-प्रतिघात और घटनाओं के उत्थान-पतन व्यक्ति की चेतना को पार्थिवता की ओर से उदासीन करके जब अंतर्मुखी बना देते हैं, तभी रहस्यवादी रचनाओं की सृष्टि होती है।

—प्रेमनारायण टंडन

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ का प्रकाशन

साहित्यिक पारिभाषिक शब्दावली--GLOSSARY OF LITERARY TERMS—लगभग चालीस सौ ऐसे पारिभाषिक अँग्रेजी हिंदी शब्दों का सकलन जिनका प्रयोग कविता कहानी, नाटक उपन्यास, कला. समालोचना, व्याकरण, भाषा-विज्ञान म आवश्यक होता है। मू० ४।) अपने ढंग का सर्वप्रथम प्रकाशन।

हिंदी रचना और उसके अङ्ग—मू० २॥) तीसरा संस्करण। बंबई विद्यापीठ की 'उत्तमा' और 'हिंदी-भाषा-रत्न' तथा ज्ञानलता महल द्वारा संचालित 'भारतीय विद्यापीठ' की राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षाओं के लिए स्वीकृत। प्रारंभिक भाषा-ज्ञान, व्याकरण-सार, हिंदी-रचना-सम्बन्धी ज्ञान, नमूने के लगभग ६० लेख, ५० निबंधों की रूपरेखाएँ, अपठित और अनुवाद, पत्र-लेखन-कला, काव्य-रचना, छंद और अलंकार ज्ञान आदि विषय हैं। निबंधकी सुंदर पुस्तक है।

रहस्यवाद और हिंदी कविता मू० १॥) रहस्यवाद तथा छायावाद-संबंधी प्रतिष्ठित विद्वानों के सुंदर लेखों का सर्वप्रथम संग्रह। नया संस्करण अभी अभी छपा है।

चन्द्रगुप्त : एक अध्ययन, अजातशत्रु : एक अध्ययन, स्कंदगुप्त : एक अध्ययन--प्रत्येक का मू० १॥) ध्रुवस्वामिनी : एक अध्ययन—मू० १) स्वर्गीय श्री जयशङ्कर प्रसाद जी के नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन समस्त भारत में प्रचलित पुस्तकें हैं।

हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—बंबई हिंदी विद्यापीठ तथा भारतीय विद्यापीठ द्वारा सञ्चालित परीक्षाओं के लिए स्वीकृत। इसमें हिंदी भाषा, कविता, गद्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध और समालोचना का सरल इतिहास है। मूल्य ||=)।

सरल हिंदी शिक्षा--उर्दू जाननेवालों को हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि सिखानेवाली बहुत सुंदर पुस्तक। इसमें सारे नियम और मुख्य मुख्य बातें हिंदी और उर्दू में नोट-रूप में लिखी हैं। बंबई हिंदी विद्यापीठ द्वारा स्वीकृत। मूल्य ।=)

प्रेमचंद : कृतियाँ और कला—प्रेमचंद साहित्य और कला पर लिखे हुए प्रतिष्ठित विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण लेखों का संकलन। हिंदी प्रचार सभा मद्रास द्वारा स्वीकृत। दूसरा संस्करण। मूल्य २)

चित्ररेखा--लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के लेक्चरर डा० भगीरथ मिश्र एम०ए० डी० का सुंदर कवितासंग्रह—मूल्य १)

हृदय ध्वनि—भावपूर्ण और अनुभूतिप्रधान रचनाओं का सुंदर संकलन। क्षय-ग्रस्त कवि के मर्मस्पर्शी विचार। मू० १।)

सौभाग्यदान—तीन एकांकी नाटक जिनका संबंध माननीय श्री नेता जी से है। अपने ढंग की हिंदी में सर्वप्रथम रचना है। मूल्य ||=)

रात की रानी--हृदय का स्पर्श करनेवाली चुनी हुई पंद्रह श्रेष्ठ, सुरुचिपूर्ण और कलापूर्ण कहानियाँ। मू० २)

संकल्प—तीन सामयिक नाटकों का सुंदर संकलन। मू० १)

प्रेरणा—पाँच एकांकी नाटक। युक्तप्रांत के शिक्षा-प्रसार-विभाग द्वारा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत। दूसरा संस्करण। मू० |||)

कर्मपथ—तीन सुरुचिपूर्ण एकांकियों का सुंदर संकलन। मू० १।)

तुलसी के राम--महाकवि के समस्त ग्रंथों में बिखरे हुए विचारों के आधार पर श्री रामचंद्र के चरित्र की मुख्य मुख्य बातें। मू० १)

हास्य और विनोद—हास्यरस के लेखों का रोचक संकलन। मू० ||)

रेखाचित्र--हिंदू नारी, हिंदी लेखक, भैया साहब, अफसर आदि मार्मिक रेखाचित्रों का संकलन। मू० ॥=)

हमारे अमर नायक—संस्कृत के शकुंतला, रघुवंश, उत्तररामचरित, कादंबरी, नागानंद तथा मृच्छकटिक और हिंदी के सत्यहरिश्चंद्र नामक ग्रंथों के नायकों का रोचक चरित्रचित्रण। मू० ।'।)

विद्यामंदिर द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

प्रसाद जी के तीन नाटक--मू० १) स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त और अजातशत्रु के अध्ययनों का संक्षिप्त संस्करण।

कामायनी-मीमांसा—मू० ।॥≈) । साकेत-समीक्षा—मू० २॥) 'कामायनी' और 'साकेत-संबंधी प्रतिष्ठित विद्वानों के आलोचनात्मक लेखों का तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयोगी संकलन।

साहित्य परिचय- मू० २॥) आलोचनात्मक लेखों का संकलन!

गोपीविरह और भँवरगीत—मू० १॥) सूर के १५१ चुने हुए पदों का सटिप्पणी संकलन, ८० पृष्ठों की आलोचनात्मक भूमिका।

सूर : जीवनी और ग्रंथ--मू० ॥) आलोचनात्मक ग्रंथ।

पद्मावती समय--मू० १) पृथ्वीराजरासो के पद्मावती समय का सुसंपादित और सटिप्पणी संस्करण, आलोचनात्मक भूमिका भी है।

नवकथा मंजरी—नौ पद्यबद्ध कहानियों का संकलन। मू० ॥)

प्रेमचंद और ग्राम-समस्या—आगरा विश्वविद्यालय द्वारा बी० ए० के लिए स्वीकृत। नया संस्करण अभी छपा है। मू० १)

द्विवेदीमीमांसा—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की हिंदी-सेवा का आलोचनात्मक अध्ययन। अपने विषय की एक ही पुस्तक है। मू० २)

हिंदी साहित्य निर्माता—मू० १) सातवाँ संस्करण समाप्त। यू० पी० की हाईस्कूल तथा दिल्ली और राजपूताने की इंटर परीक्षाओं के लिए स्वीकृत। २०,००० से ज्यादा बिक चुकी है। चुने हुए चालीस कवियों और लेखकों की भाषा-शैली, विषय, आदि की आलोचना।

साहित्यिकों के संस्मरण--मू० १॥) तीसरा संस्करण। यू० पी०

को हाई स्कूल परीक्षा के लिए स्वीकृत थी और बिहार के पुस्तकालय
के लिए स्वीकृत है। बीस प्रमुख लेखकों के गद्य का संग्रह है।

हमारे गद्य-निर्माता—मू० २) चौथा संस्करण। यू० पी०
दिल्ली. राजपूताना और मद्रास की कई परीक्षाओं के लिए स्वीकृत है
प्रतिष्ठित लेखकों की हिंदी-सेवा और भाषा-शैली की आलोचना है।

हिंदी साहित्य का छात्रोपयोगी इतिहास—मू० २॥) इस
गिनती हिंदी के श्रेष्ठ संक्षिप्त इतिहासों में है। नया संस्करण छपा है।

प्रताप समीक्षा—मू० १) पंडित प्रतापनारायण मिश्र के चुने हु
निबंधों के साथ उनकी भाषा-शैली आदि की विशद आलोचना है।

साहित्यांगों का विकास—मू० १) हिंदी भाषा, कविता. गद्
कहानी, निबंध, समालोचना, गद्यकाव्य, नाटक आदि का विकास।

बालोपयोगी सुंदर-सचित्र पुस्तकें—गाँधीजी से क्या सीखें? ।
चौपट चौधरी ।-) अर्जुन के युद्ध ।) अर्जुन की स्वर्गयात्रा ।) भा
का व्याह ।) मनकहे पंडित ≡) रचना बोध ॥=) अमर नायक ॥
निबंधों की रूपरेखाएँ ।-) बाँके खिलाड़ी ≡) हँसी का फुहारा
राबिसन क्रूसो ।-) गोबर चौबे ।) जादूगर का बदला ।) हजयतसिंह
रिक्शा की सवारी ≡) चाँद का व्याह ॥=) दो देहाती ।≡) पं
कहानियाँ ।=) भौगोलिक कहानियाँ ≡) नवाब छछूंदरअली ।) किर
की अम्मा ≡) दो वीर बच्चे ।)

होनहार—बालक बालिकाओं के लिये उपयोगी मासिक-प
वार्षिक मूल्य ३) नमूना ।)

पुस्तकें मँगाने के नियम

जो पुस्तकें मँगानी हों उनके नाम कार्ड पर लिखकर भेज दीजि
साथ में एक रुपए का मनीआर्डर भेजिए। ५) से कम के आर्डर
एक आना रुपया, ५) से २०) तक के आर्डर पर दो आना रु
२०) से अधिक के आर्डर पर चार आना रुपया कमीशन दिया जाय

व्यवस्थापक, विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ